श्रीः ।

शिवसंहिता ।

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकयोगिराजश्री ६ स्वामीस्वयंप्रकाशानन्दसरस्वतीजीकेआज्ञानुसारगोस्वामीश्रीरामचरणपुरीकृत भाषानुवादसहिता ।

इयं च

श्रीकृष्णदासात्मज-खेमराजेन

मुंबय्यां

स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" ख्ये

मुद्रणयंत्रालये मुद्रयित्वा

प्रकाशंनीता.

संवत् १९५० शके १८१५

प्रस्तावना.

सर्व मोक्षकांक्षी महापुरुषोंको विदित होय कि यह शिव संहिता नामक ग्रंथ जो संसारके उपकारार्थ पूर्व श्रीपार्वती जीके प्रश्नोत्तर योगमार्ग उत्पत्ति कर्त्ता श्रीशिवजीनें कृपापूर्वक योगोपदेश किया सो यह ग्रंथ योगाभ्यासी जनोंको अति उपकारक है इस हेतुसे कि श्रीशिवजीनें इसमें ब्रह्मज्ञान और हठयोगक्रिया राजयोगसहित उत्तम सरल रीतिसे उपदेश कियाहै इसको परिश्रमसे लाभ करके योगाभ्यासी और मोक्ष कांक्षी जनोंके उपकारार्थ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकयोगी-राजश्री ६ स्वामीस्वयंप्रकाशानन्दसरस्वतीजीके साधक शिष्य काशी निवासी गोस्वामी रामचरणपुरीनें अपने लघुमति के अनुसार भाषानुवाद करके अब दूसरी वार शुद्ध करके मुंबईमें श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रायन्त्राधिकारी श्रीकृष्णदासात्मज खेमराज इन्होंके द्वारा प्रकाश किया । अब सर्व शास्त्रवेत्ता बुद्धिमान जनोंसे प्रार्थनाहै कि इस ग्रंथके मूल वा टीकामें जहां अशुद्ध होय उसको कृपा पूर्वक सुधारदें.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

खेमराज श्रीकृष्णदास

श्रीवेंकटेश्वर छापखाना (मुंबई.)

शिवसंहिताकी विषयानुक्रमणिका ।

इति सूचीपत्र संपूर्ण

ॐ ओ ३ म्

श्रीगणेशायनमः ।

अथ

शिवसंहिता ।

मंगलाचरणं ।

विघ्नहरण गणनाथजी, बुद्धिगेह तुअ माहिं ॥
विघ्न बुद्धि दोनों विकल, नशत जात जगमाहिं ॥ १ ॥
बुद्धिराज दीजे हमें, बुद्धि पुत्र गौरीश ॥
योग युक्ति भाषा करों; धरि गुरु आज्ञा शीश ॥ २ ॥
शिव आलयमें जायके, होत जीव भवपार ॥
पाय कृपा गुरु शम्भुकी, भज्ञन चहोंकेंवार ॥ ३ ॥
गौरी अब मोहिं दीजिए, अनुशासनसुत जानि ॥
शिवभाषित भाषा रचों, छूटों भवभ्रम जानि ॥ ४ ॥
फिर नहिं आवों जगतमें, योग युक्ति सब जानि ॥
मातु कृपा मोपर करहु, शिक्षहुदेहुमोहिंज्ञान ॥ ५ ॥
नाम हमारोहै नहीं, नहीं कर्म गुण त्रास ॥
मातु पुकारत पै अहों, रामचरणपुरि दास ॥ ६ ॥

श्लोक–यंज्ञातुमेवयतिनो मतिपूर्वमेतत्
संसारसत्वरकलत्रसुतादिसर्वम् ॥
त्यक्तासमाधिविधिमेवसमाश्रयन्ते
वन्देकमप्यहमजज्ञगदादिबीजम् १

शिवसंहिता ॥

भाषाटीका ॥

प्रथमपटलः ॥

मूलं-एकं ज्ञानं नित्यमाद्यन्तशून्यं नान्यत् किञ्चिद्वर्त्तते वस्तु सत्यम् ॥ यद्भेदोस्मिन्निन्द्रियोपाधिना वै ज्ञानस्यायं भासते नान्यथैव ॥ १ ॥

टीका-केवल एक ज्ञान नित्य आदि अन्त रहितहै ज्ञानसे अलग अन्य कोई वस्तु सत्य संसारमें वर्त्तमान नहींहै केवल इन्द्रियोपाधिद्वारा संसार जो भिन्न भिन्न बोध होताहै सो यह ज्ञान मात्रही प्रकाश होताहै और कुछ नहीं है अर्थात् ज्ञानसे भिन्न कुछ नहींहै ॥ १ ॥

मूलं-अथ भक्तानुरक्तोऽहं वक्ष्ये योगानुशासनम् ॥ईश्वरः सर्वभूतानामात्ममुक्तिप्रदायकः ॥ २ ॥ त्यक्त्वा विवादशीलानां मतं दुर्ज्ञानहेतुकम् ॥आत्मज्ञानाय भूतानामनन्यगतिचेतसाम्॥३ ॥

टीका-सर्व प्राणीमात्रके ईश्वर आत्ममुक्ति प्रदायक भक्तवत्सल जिन मनुष्योंको सिवाय आत्मज्ञान के अन्यगति नहींहै उनके हेतु कृपापूर्वक योगो

देश करतेहैं विवाद शील लोगोंका मत दुर्ज्ञानका हेतुहै यह त्यागनेके योग्यहै ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥

मूलं-सत्यं केचित् प्रशंसन्ति तपः शौचं तथा परे ॥ क्षमां केचित्प्रशंसंति तथैव शममार्ज्जवम् ॥४॥ केचिद्दानं प्रशंसन्ति पितृकर्म तथापरे ॥ केचित् कर्म प्रशंसन्ति केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥

टीका-कोई सत्यकी प्रशंसा करतेहैं, कोई तपस्याकी, कोई शौचाचारकी, कोई क्षमाकी प्रशंसा, कोई समताकी, कोई सरलताको, कोई दानकी प्रशंसा, कोई पितृकर्मकी, कोई सकाम उपासनाकी, कोई पुरुष वैराग्यको उत्तम कहतेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूलं-केचिद्गृहस्थकर्माणि प्रशंसन्ति विचक्षणाः ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म तथा केचित्परं विदुः ॥ ६ ॥ मन्त्रयोगं प्रशंसन्ति केचित्तीर्थानुसेवनम् ॥ एवं बहूनुपायांस्तुप्रवदन्ति विमुक्तये ॥ ७ ॥

टीका-कोई पुरुष गृहस्थकर्मकी प्रशंसा करतेहैं, कोई बुद्धिमान् पुरुष अग्निहोत्रादिक कर्मकी प्रशंसा करतेहैं कोई मंत्रादिक कोई तीर्थसेवन करना मुख्य

समझतेहै इसी प्रकार मनुष्य बहुतसे उपाय मुक्तिके हेतु अपने मतिके अनुसार कहतेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

मूलं-एवं व्यवसिता लोके कृत्याकृत्यविदो जनाः ॥ व्यामोहमेव गच्छन्ति विमुक्ताः पापकर्मभिः ॥ ८ ॥ एतन्मतावलम्बी यो लब्ध्वा दुरितपुण्यके ॥ भ्रमतीत्यवशः सोऽत्र जन्ममृत्युपरम्पराम् ॥ ९ ॥

टीका-इसीतरह विधिनिषेध कर्मके जाननेवाले लोग पापकर्मसे रहित होके मोहमेंही पडतेहैं और जो मनुष्य पुण्यपापका अनुष्ठान पहिले जो मत कहा है उसके आसरे होके करतेहैं उसका फल यह होता है कि मनुष्य वारंवार संसारमें जनमता और मरता है अर्थात् शुभाशुभ कर्म करनेसे कदापि मोक्ष नहीं होता परन्तु शुभकर्म करनेसे केवल चित्तकी शुद्धी होतीहै ॥ ८ । ९ ॥

मूलं-अन्यैर्मतिमतां श्रेष्ठैर्गुप्तालोकनतत्परैः ॥ आत्मानो बहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा ॥ १० ॥ यद्यत्प्रत्यक्षविषयं तदन्यन्नास्ति चक्षते ॥ कुतः स्वर्गादयः सन्तीत्यन्ये निश्चितमानसाः ॥ ११ ॥

टीका–कोई कोई बुद्धिमान् गुप्त शास्त्रके जाननेमें तत्पर अर्थात् गूढदर्शी बहुत आत्मा नित्य और सर्वव्यापक कहतेहैं बहुत प्रत्यक्ष वादी यह कहते हैं कि जो वस्तु प्रत्यक्ष देखनेमें आताहै वही सत्यहै और कुछ नहीं है जिनकी बुद्धि स्वर्गादिकके न माननेमें निश्चितहै ॥ १० ॥ ११ ॥

मूलं–ज्ञानप्रवाह इत्यन्ये शून्यं केचित्परं विदुः ॥ द्वावेव तत्त्वं मन्यन्तेऽपरे प्रकृतिपूरुषौ ॥ १२ ॥

टीका–कोई मनुष्य कहतेहैं कि सिवाय ज्ञान धाराके और कुछ नहीं है जो वस्तु संसारमें वर्तमान देखने या सुननेमें आती है या किसी प्रकारसे उसका होना निश्चय होताहै वह सब ज्ञानही है कोई पुरुष यही जानताहै कि सिवाय शून्यके और कुछ नहीं है इसीतरह कोई मनुष्य प्रकृति पुरुष दोईको तत्त्व मानतेहैं ॥ १२ ॥

मूलं–अत्यन्तभिन्नमतयः परमार्थपराङ्मुखाः एवमन्ये तु संचिन्त्य यथामति यथाश्रुतम् ॥ १३ ॥ निरीश्वरमिदं प्राहुः सेश्वरञ्च तथा परे ॥ वदन्ति विविधैर्भेदैः सुयुक्त्या स्थितिकातराः ॥ १४ ॥

टीका–बहुतसे परमार्थसे बहिर्मुख जिनकी भिन्न भिन्न मति है अपने मतिके अनुसार कर्मोंको मानते और करतेहैं कोई कहतेहैं कि ईश्वर नहीं है इसीतरह बहुत लोग कहतेहैं कि यह संसार बिना ईश्वरके नहीं है अर्थात् ईश्वरहीसे है यही निश्चय जानते हैं अपनी युक्तिसे बहुत २ भेद कहते और उसमें स्थिरतासे तत्पर रहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलं–एते चान्ये च मुनयः संज्ञाभेदाः पृथ-
ग्विधाः ॥ शास्त्रेषु कथिता ह्येते लोकव्या-
मोहकारकाः ॥ १५ ॥ एतद्विवादशीला-
नां मतं वक्तुं न शक्यते ॥ भ्रमन्त्यस्मिन्
जनाः सर्वे मुक्तिमार्गबहिःकृताः ॥ १६ ॥

टीका–ऐसे बहुत मुनिलोगोंने नाना प्रकारके मत शास्त्रमें स्थापन किये हैं यह संसारके मोह भ्रममें पडनेका हेतुहै अर्थात् शास्त्रमें बहुत प्रकारके मत देखनेसे मनुष्यके चित्तमें भ्रम उत्पन्न होताहै उस भ्रमका फल यहहै कि अपनी बुद्धिके अनुसार कोई एक मत ग्रहण करके मरणपर्यंत उसमें तत्पर मनुष्य रहताहै परंतु अमृत लाभ नहीं होता ऐसे विवादशील लोगोंका मत वर्णन करनेको हम शक्य नहीं हैं

मुक्तिमार्गसे विमुख होके सब मनुष्य संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ १६ ॥ १६ ॥

मूलं-आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनःपुनः ॥ इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम् ॥ १७ ॥

टीका-श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि सब शास्त्रको देखके और वारम्वार विचारके यह निश्चित हुआकि एक यह योगशास्त्र उत्तम परममतहै अर्थात् यह सबसे उत्तमहै तात्पर्य यह है कि ऐसे मतको छोडके जिसकी प्रशंसा ईश्वर अपने मुखारविन्दसे करते हैं और जिसके ग्रहण करनेसे ब्रह्म करामलकवत् जान पडताहै मनुष्य विक्षिप्तके तरह इधर उधर चित्तके दौडातेहैं और बहुत लोग यह विचारतेहैं कि यह बडा कठिनहै आश्चर्यकी बातहै कि मनुष्य शरीरसे जब ऐसा उत्तम श्रम न होगा तो जान पडाताहै कि रोगादिकसे शरीरकेनाश होनेसे पीछे फिर जब पशुका जन्म होगा तब कुछ ईश्वरके जाननेमें श्रम करैंगे ॥ १७ ॥

मूलं-यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति निश्चितम् ॥ तस्मिन् परिश्रमः कार्यः किमन्यच्छास्त्रभाषितम् ॥ १८ ॥

टीका-निश्चय जिसके जाननेसे सब संसार जाना जाताहै ऐसे योगशास्त्रके जाननेमें परिश्रम करना अवश्य उचितहै फिर अन्य शास्त्र जो कहेहैं उनका क्या प्रयोजनहै अर्थात् कुछ प्रयोजन नहीं तात्पर्य यह है कि पंडित लोग वृथा विवाद करके जो लोग सुमार्गमें जानेकी इच्छा करतेहैं उनको भी भ्रष्ट कर देतेहैं॥१८॥

मूलं-योगशास्त्रमिदं गोप्यमस्माभिः परिभाषितं ॥ सुभक्ताय प्रदातव्यं त्रैलोक्ये च महात्मने ॥ १९ ॥

टीका-यह योगशास्त्र जो हमने कहाहै सो परम गोपनीय है यह त्रैलोक्यमें महात्मा और अच्छे भक्त जनोंको देना उचितहै तात्पर्य यह है कि विना ईश्वरके भक्तिके यह शुभकर्म सिद्ध नहीं होता न उधर चित्तकी वृत्ति जातीहै इस हेतुसे अभक्तजनोंको देना उचित नहींहै ॥ १९ ॥

मूलं-कर्मकाण्डं ज्ञानकाण्डमिति वेदो द्विधामतः ॥ भवति द्विविधो भेदो ज्ञानकाण्डस्य कर्मणः ॥ २० ॥ द्विविधः कर्मकाण्डः स्यान्निषेधविधिपूर्वकः ॥ निषिद्धकर्मकरणे पापं भवति निश्चितम् विधि-

नाकर्मकरणे पुण्यं भवति निश्चितम् ॥ २१॥

टीका-कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड वेदका दो मत है इसमेंभी दों दो भेद कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डमें भयाहै ॥ २० ॥ उस कर्मकाण्डमें दोप्रकारहै एक निषेध दूसरा विधि निषेध कर्म करनेसे निश्चय पाप होताहै विधान कर्म करनेसे निश्चय करके पुण्य होताहै ॥ २१ ॥

मूलं-त्रिविधो विधिकूटः स्यान्नित्यनैमित्ति काम्यतः नित्येऽकृते किल्बिषं स्यात्का म्ये नैमित्तिके फलम् ॥२२॥

टीका-विधि कर्ममें तीन प्रकारका भेद कहाहै नित्य १ नैमित्तिक २ सकाम ३ नित्यकर्म संध्या देवार्चन आदि न करनेसे पाप होता है सकाम अर्थात् जो कर्म फलके इच्छासे किया जाताहै और नैमित्तिक जो तीर्थों में पर्वादिकमें स्नानादिक करते हैं इनके न करनेसे पाप नहीं होता परन्तु करनेसे फल होताहै ॥ २२ ॥

मूलं-द्विविधन्तु फलं ज्ञेयं स्वर्गो नरकएव च स्वर्गो नानाविधश्चैव नरकोपि तथा भवेत् ॥ २३ ॥

टीका-फल दोप्रकारका होताहै स्वर्ग और नरक स्वर्ग नानाप्रकारकाहै ऐसेही नरकभी बहुत प्रकारका

है तात्पर्य यह है कि जैसा जो मनुष्य शुभा शुभ कर्म करता है वैसेही नरक वा स्वर्गमें जाताहै ॥ २३ ॥

मूलं–पुण्यकर्मणि वै स्वर्गो नरकः पापकर्मणि कर्मबंधमयी सृष्टिर्नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ २४ ॥

टीका–पुण्यकर्म करनेसे स्वर्गमें जाताहै और पापकर्मसे नरकमें जाताहैं संसार कर्मसे निश्चय करकेबंधाहै दूसरा हेतु नहीं है तात्पर्य यह है कि जो ईश्वरको जानके कर्माकर्मसे अपनेको रहित समझेगा वह इस बंधसे छूटजायगा ॥ २४ ॥

मूलं–जन्तुभिश्चानुभूयंते स्वर्गे नानासुखानि च नानाविधानि दुःखानि नरके दुःसहानि वै ॥२५॥

टीका– प्राणी स्वर्गमें नानाप्रकारके सुखका अनुभव करता है ऐसेही बहुत प्रकारके दुःसह दुःख नरकमें भी भोगताहै ॥ २५ ॥

मूलं–पापकर्मवशाद्दुःखं पुण्यकर्मवशात्सुखं तत्स्मात्सुखार्थीविविधंपुण्यं प्रकुरुते ध्रुवं२६

टीका–पापकर्म करनेसे दुःख होताहै और पुण्यकर्म करनेसें सुख होताहै इस हेतुसे निश्चय करके सुखार्थी पुरुष नानाप्रकारका पुण्य करते हैं ॥ २६ ॥

मूलं–पापभोगावसाने तु पुनर्ज्जन्म भवे त्खलु ॥ पुण्यभोगावसाने तु नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ २७ ॥

टीका–पापका फल भोगनेके पीछे अवश्य फिर जन्म होताहै ऐसेही पुण्यफल भोगनेके अंतमें निश्चय फिर जन्म होता है अन्यथा नहीं होता ॥२७॥

मूलं–स्वर्गेऽपि दुःखसंभोगः परस्त्रीदर्शना द्ध्रुवम् ॥ततो दुःखमिदं सर्वं भवेन्ना स्त्यत्र संशयः ॥ २८ ॥

टीका–स्वर्गमेंभी दुःखहैं इसकारणसे किउसस्थानमें परस्त्रीका दर्शन अवश्य होताहै उसकी अप्राप्तिमें मानसिक व्यथा उत्पन्न होतीहै अन्य भी राग द्वेषादि बहुतसे कारण हैं कि प्राणीके चित्तको स्वर्गमें भी स्थिर नहीं रहने देते इस हेतुसे संसारमें सिवाय दुःखके सुख नहीं है ॥ २८ ॥

मूलं–तत्कर्मकल्पकैः प्रोक्तं पुण्यपापमि- तिद्विधा ॥ पुण्यपापमयो बन्धो देहिनां भवति क्रमात् ॥ २९ ॥

टीका–बुद्धिमानलोगोंने पुण्य और पाप दोप्रकारका

कर्म कहाहै इसी पुण्य पापसे शरीर बन्धायमान है अर्थात् वारम्वार शरीरधारण करनेका कारणहै॥२९॥

मूलं-इहामुत्र फलद्वेषी सफलं कर्मसंत्यजेत् ॥ नित्यनैमित्तिके संगं त्यक्त्वा योगे प्रवर्तते ॥३०॥

टीका-इस लोकका भोग वा परलोकके फलकी इच्छा और नित्य नैमित्तिक आदि कर्मोंको फलसहित त्यागके योगाभ्यास अर्थात् परब्रह्मके विचारमें महात्मा जनोंकेतत्पर रहना उचित है॥ ३० ॥

मूलं- कर्मकाण्डस्य माहात्म्यं ज्ञात्वा योगी त्यजेत्सुधीः ॥ पुण्यपापद्वयं त्यक्त्वा ज्ञानकाण्डे प्रवर्तते ॥ ३१ ॥

टीका-कर्मकाण्डके माहात्म्यको जानके योगीको उचितहै कि पुण्य पाप दोनोंको तृणवत् विचारके त्याग दे और ज्ञानकाण्डमें तत्पर होरहे ॥ ३१ ॥

मूलं- आत्मा वा रे च श्रोतव्यो मंतव्य इति यच्छ्रुतिः ॥ सा सेव्या तत्प्रय त्नेन मुक्तिदा हेतुदायिनी॥ ३२ ॥

टीका- यह श्रुतिका वाक्यहै कि आत्माको सुनो और आत्माको मनन करो अर्थात् जो कुछ

है सो आत्माही है सो श्रुति मुक्तिकी देनेवाली है यत्न करके सेवनेके योग्य है ॥ ३२ ॥

मूलं–दुरितेषु च पुण्येषु यो धीवृत्तिं प्रचोदयात् ॥ सोऽहं प्रवर्तते मत्तो जगत्सर्वं चराचरम् ॥ ३३ ॥ सर्वं च दृश्यते मत्तः सर्वं च मयि लीयते ॥ न तद्भिन्नोहमस्मिन्नो यद्भिन्नो न तु किंचन ॥ ३४ ॥

टीका– पाप पुण्य दोनोंमें समान रूपकी बुद्धिको जो वृत्ति प्रेरणा करतीहैसो हमहैं और हमसेही सब जगत्चराचर उत्पन्नहै ॥ ३३ ॥ और जो देख पडताहै वह सब हमहैं हममेंही सब लीन होताहै न वह हमसे भिन्नहै न हम उससे किंचित् मात्र भिन्नहैं तात्पर्य यह है कि वह आत्मा जिससे यह जगत् उत्पन्नहै हमसे भिन्न नहीं है इस हेतुसे इस संसारके स्थिति संहार कर्त्ता हमहैं ऐसी वृत्ति योगीकी रहती है ॥ ३४ ॥

मूलं–जलपूर्णेष्वसंख्येषु शरावेषु यथा भवेत् ॥ एकस्य भात्यसंख्यत्वं तद्भेदोऽत्र न दृश्यते ॥ ३५ ॥ उपाधिषु शरावेषु या संख्या वर्तते परा ॥ सा संख्या भवति यथा रवौ चात्मनि तत्तथा ॥ ३६ ॥

टीका-जलसे भरा असंख्य शराव अर्थात् मृत्तिका आदिके पात्रमें एक सूर्यका अनेक प्रतिबिंब देख पडता है वास्तवमें-भेद नहीं है जो भेद देख पडता है वह शरावके संख्याका भेद है ॥ ३५ ॥ जिस प्रकारसे शरावके संख्यासे सूर्यमें भेद जान पडता है उसी प्रकार मायाकी उपाधिसे संसार भिन्न भिन्न जान पडताहै वस्तुतः केवल एक ब्रह्म है ॥ ३६ ॥

मूलं-यथैकः कल्पकः स्वप्ने नानाविधतयेष्यते ॥ जागरेऽपि तथाप्येकस्तथैव बहुधा जगत् ॥ ३७ ॥

टीका-जैसे स्वप्न अवस्थामें एकसे अनेक कल्पना होतीहै निद्राच्युत हो जानेपर कुछ नहीं रहता उसी प्रकार मायाके आवरणसे अनेक संसार जान पडती है जब ज्ञानरूपी खड्गसे मायाका पटल कटजाता है तब सिवाय शुद्ध ब्रह्मके और कुछ नहीं रहजाता ॥ ३७ ॥

मूलं-सर्पबुद्धिर्यथा रज्जौ शुक्तौ वा रजतभ्रमः ॥ ३८ ॥ तद्वदेवमिदं विश्वं विवृतं परमात्मनि ॥ रज्जुज्ञानाद्यथा सर्पो मिथ्यारूपो निवर्तते ॥ ३९ ॥ आत्मज्ञानात्तथा याति मिथ्याभूतमिदं जगत् ॥ रौप्यभ्रान्तिरियं याति शुक्तिज्ञानाद्यथा खलु ४०

टीका-रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति और सीपीमें चांदीकी भ्रान्ति होती है॥३८॥ उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्ममें संसारकी झूठी भ्रान्ति होती है रस्सीके ज्ञान होनेसे झूठे सर्पका अभाव होजाताहै ॥३९॥ उसी तरह आत्मज्ञान होनेसे यह संसार नहीं रहजाता सीपीकोभी अच्छी तरह निश्चय जान लेनेसे चांदीकी भ्रांति दूर होती है॥४०॥

मूलं-जगद्भ्रान्तिरियं याति चात्मज्ञानाद् यथा तथा ॥ यथा रज्जूरगभ्रान्तिर्भवेद्भे-दवशाज्जगत् ॥ ४१ ॥ तथा जगदिदं भ्रांतिरध्यासकल्पनाजगत् ॥ आत्मज्ञा-नाद्यथा नास्ति रज्जुज्ञानाद्भुजङ्गमः॥४२॥

टीका-वैसेही आत्मज्ञान होनेसे जगतकी भ्रान्ति दूर होती है जैसे रस्सीमें सर्पकी भ्रांति होतीहै॥४१॥ उसी तरह आत्मामें अध्यास कल्पनामात्र जगत्की भ्रांतिहै रज्जुवत् ज्ञान होनेसे फिर जगत्का तीनों कालसे अभाव हो जाताहै ॥ ४२ ॥

मूलं-यथादोषवशाच्छुक्कः पीतो भवति ना न्यथा ॥ अज्ञानदोषादात्मापि जगद्भवति दुस्त्यजम् ॥ ४३ ॥ दोषनाशे यथा शुक्लो

गृह्यते रोगिणा स्वयम्॥ शुक्लज्ञानात्तथा ज्ञाननाशाद्दात्मा तथा कृतः ॥ ४४ ॥

टीका–जैसे मनुष्यको कवलकी व्याधि अर्थात् पित्तादिकके दोषसे सब वस्तु निश्चय पीतवर्ण देख पडती हैं उसीप्रकार अज्ञानरूपी दोषसे शुद्ध आत्मा नहीं प्रतीत होताहै परन्तु यह झूठा संसार देख पडता है ऐसा अज्ञान बडे कष्टसे दूर होताहै जैसे पित्तादिक दोषके नाश होनेसे फिर यथार्थ देख पडताहै उसी प्रकार अज्ञान दूर होनेसे शुद्धब्रह्म निर्विकार जान पडताहै तात्पर्य यह है कि मनुष्यके पीछे एक अज्ञान की व्याधि बहुत बडी लगी है इसकी ओषधि आत्म ज्ञान है यह बात निश्चयहै कि व्याधि विना ओषधिके दूर नहीं होती ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

मूलं–कालत्रयेपि न यथा रज्जुः सर्पो भवेदिति ॥ तथात्मा न भवेद्विश्वं गुणातीतो निरञ्जनः ॥ ४५ ॥

टीका–जिस तरह रस्सी तीनों कालमें सर्प नहीं हो सक्ती उसी तरह आत्माभी तीनोंकालमें कदापि संसार नहीं हो सक्ता अर्थात् नहीं है इस हेतुसे कि आत्मा गुणातीतहै अर्थात् गुणसे रहितहैं ॥ ४५ ॥

मूलं-अगमाऽपायिनोऽनित्या नाश्यत्वे नेश्वरादयः॥ आत्मबोधेन केनापि शास्त्रादेतद्विनिश्चितम् ॥ ४६ ॥

टीका-वह शास्त्र जिसमें आत्मबोधका निरूपण कियाहै उससे निश्चयहै कि इंद्रादि देवताभी जो ईश्वर कहे जातेहैं नित्यभावसे रहित हैं अर्थात् उनकाभी जनन मरण होताहै ॥ ४६ ॥

मूलं-यथा वातवशात्सिन्धावुत्पन्नाः फेनबुद्बुदाः ॥ तथात्मनि समुद्भूतं संसारं क्षणभंगुरम् ॥ ४७ ॥

टीका-जैसे वायुके उपाधिसे समुद्रमें फेन और बुदबुदा उत्पन्न होताहै क्षणभरमें फिर उसीमें लय हो जाताहै तैसेही आत्मासे संसार मायाके उपाधिसे क्षण भंगी उत्पन्न होताहै फिर उसीमें लय होजाताहै ॥४७॥

मूलं-अभेदो भासते नित्यं वस्तुभेदो न भासते ॥ द्विधात्रिधादिभेदोयं भ्रमत्वे पर्यवस्यति ॥ ४८ ॥

टीका-परमात्मा का संसारसे सदा अभेदहै और किसीवस्तुमें भेद नहींहै एक दो तीन ऐसा जो वस्तु का भेद जानपडताहै वह भ्रमका कारण है ॥ ४८ ॥

मूलं-यद्भूतं यच्च भाव्यं वै मूर्तामूर्तं तथैव च ॥ सर्वमेव जगदिदं विवृतं परमात्मनि ॥ ४९ ॥

टीका-जो भयाहै और जो होगा मूर्तिमान् वा अमूर्तिमान् यह सब जगत् आत्मासे मिलाहै अर्थात् उससे भिन्न नहीं है ॥ ४९ ॥

मूलं-कल्पकैः कल्पिता विद्या मिथ्या जाता मृषात्मिका ॥ एतन्मूलं जगदिदं कथं सत्यं भविष्यति ॥ ५० ॥

टीका-यह संसार मिथ्याभूत अविद्याकल्पनासे कल्पित भयाहै बडे आश्चर्य की बातहै कि जिसकी जड मिथ्याहै वह आप कब सत्य होसक्ताहै अर्थात् सब झूठहै ॥ ५० ॥

मूलं-चैतन्यात् सर्वमुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ तस्मात् सर्वं परित्यज्य चैतन्यंतु समाश्रयेत् ॥ ५१ ॥

टीका-केवल एक चैतन्य ब्रह्मसे जरायुज, अंडज स्वेदज, उद्भिज्ज, आदि सकल चराचर संसार उत्पन्न भया है इस हेतुसे सबको त्यागिके केवल उसी एक

चैतन्य आत्माके आसरे होना उचित है क्योंकि वही चैतन्य सबका कारण है ॥ ५१ ॥

मूलं–घटस्याभ्यंतरे बाह्ये यथाकाशं प्रवर्तते ॥ तथात्माभ्यंतरे बाह्ये ब्रह्मांडस्य प्रवर्तते ॥ ५२ ॥

टीका–जैसे घटके भीतर बाहर आकाश व्याप्त है तैसेही इस ब्रह्माण्डके भीतर बाहर आत्मा परिपूर्ण व्याप्तहै ॥ ५२ ॥

मूलं–सततं सर्वभूतेषु यथाकाशं प्रवर्तते ॥ तथात्माभ्यंतरे बाह्ये ब्रह्मांडस्य प्रवर्तते ॥ ५३ ॥ वर्तते सर्वभूतेषु यथाकाशं समंततः ॥ तथात्माभ्यंतरे बाह्ये कार्यवर्गेषु नित्यशः ॥ ५४ ॥

टीका–जिसप्रकार आकाश सब चराचरमें व्याप्तहै उसीतरह आत्माभी इस जगत्‌में व्याप्तहै अर्थात् आकाशवत् सब वस्तुमें आत्मा परिपूर्ण व्याप्तहै ॥ ५३।५४ ॥

मूलं–असंलग्नं यथाकाशं मिथ्याभूतेषु पंचसु ॥ असंलग्नस्तथात्मा तु कार्यवर्गेषु नान्यथा ॥ ५५ ॥

टीका—जिसतरह आकाश सब वस्तुमें मिलाहै और सबसे अलगहै उसीतरह परमात्मा सब वस्तु चराचरमें व्याप्तहै और सबसे अलग है ॥ ५५ ॥

मूलं—ईश्वरादिजगत्सर्वमात्मव्याप्यं समन्ततः ॥ एकोऽस्ति सच्चिदानंदः पूर्णो द्वैतविवर्जितः ॥ ५६ ॥

टीका—ब्रह्मा आदि सब जगत्में वही एक आत्मापरिपूर्ण व्याप्तहै वह एक सच्चिदानन्दपरिपूर्ण द्वैतरहितहै अर्थात् दूसरा कुछ नहींहै ॥ ५६॥

मूलं—यस्मात्प्रकाशको नास्ति स्वप्रकाशो भवेत्ततः ॥ स्वप्रकाशो यतस्तस्मादात्मा ज्योतिः स्वरूपकः ॥ ५७॥

टीका—जिसका कोई प्रकाशकनहीं है वह आपही प्रकाशमानहै जो आपही प्रकाशमानहै वह आत्मा ज्योतिस्वरूपहै ॥ ५७॥

मूलं—अवच्छिन्नो यतो नास्ति देशकालस्वरूपतः ॥ आत्मनः सर्वथा तस्मादात्मा पूर्णो भवेत्खलु ॥ ५८ ॥

टीका—देशकरके वा कालके प्रमाणसे वह परिच्छिन्न नहीं है अर्थात उसका विस्तार नहीं है न उस-

मे कालका नियम है इस हेतुसे आत्मा सर्वथा निश्चय परिपूर्ण है ॥ ५८ ॥

मूलं–यस्मान्न विद्यते नाशः पंचभूतैर्वृथात्मकैः ॥ तस्मादात्मा भवेन्नित्यस्तन्नाशो न भवेत्खलु ॥ ५९ ॥

टीका–यह जो मिथ्या पंचभूतहैं इनसे उसका नाश नहीं है इसकारणसे आत्मा नित्यहै और यह निश्चय है कि उसका कभी नाश नहींहोता ॥ ५९ ॥

मूलं–यस्मात्तदन्यो नास्तीह तस्मादेकोऽस्ति सर्वदा॥ यस्मात्तदन्यो मिथ्या स्यादात्मा सत्यो भवेत्खलु ॥ ६० ॥

टीका–जब दूसरा कुछ नहीं है तो एक वही सर्वदा अद्वैत है जब उसके सिवाय अर्थात् उससे अन्य सब मिथ्याहै तो वही एक शुद्ध आत्मा सत्य है ॥ ६० ॥

मूलं–अविद्याभूते संसारे दुःखनाशे सुखं यतः ॥ ज्ञानादाद्यंतशून्यं स्यात्तस्मादात्मा भवेत्सुखम् ॥ ६१ ॥

टीका–यह संसार अविद्यासे उत्पन्न भया है इसके दुःखका नाश होनेपर सुख होताहै और ज्ञानसे

दुःखका आदि अंत शून्य है इस हेतुसे निश्चय आत्मा सुखस्वरूप है ॥ ६१ ॥

मूलं–यस्मान्नाशितमज्ञानं ज्ञानेन विश्व-
कारणम् ॥ तस्मादात्मा भवेत् ज्ञानं ज्ञानं
तस्मात्सनातनम् ॥ ६२ ॥

टीका–जिसकरके अज्ञान नाश होताहै और यह जान पडताहै कि ज्ञानही संसारका कारण है सोई आत्मज्ञान है और ज्ञानही नित्यहै ॥ ६२ ॥

मूलं–कालतो विविधं विश्वं यदा चैव भवे-
दिदम् ॥ तदेकोऽस्ति स एवात्मा कल्प-
नापथवर्जितः ॥ ६३ ॥

टीका–काल पायके अनेक प्रकारका संसार उत्पन्न होताहै, सो वह एक आत्माहै उसमें कल्पनापथ वर्जित है अर्थात् कल्पना नहीं होसक्ती ॥ ६३ ॥

मूलं–बाह्यानि सर्वभूतानि विनाशं यान्ति
कालतः ॥ यतो वाचो निवर्त्तंते आत्मा
द्वैतविवर्जितः ॥ ६४ ॥

टीका–आत्मासे जो अतिरिक्त वस्तु उत्पन्न है वह काल पायके नाश होजातीहैं आत्मा द्वैत रहित है

अर्थात् एक है इसका वर्णन नहीं होसक्ता तात्पर्य यह है कि यावत् वस्तु उत्पन्न होती है उसको काल खाजाताहै परन्तु आत्मामें कालकाभी नाश होजाताहै६४॥

मूलं–न खं वायुर्नचाग्निश्च न जलं पृथिवी नच ॥ नैतत्कार्यं नेश्वरादि पूर्णैकात्मा भवेत्खलु ॥ ६५ ॥

टीका–वह आकाश नहीं है इस हेतुसे कि उसमें शब्द नहीं है वायु नहीं है क्यों कि उसमें स्पर्श नहीं है अग्नि नहीं है काहेसे कि उसमें तेजभाव नहीं है जल नहीं है क्यों कि उसमें रस नहीं है वह पृथ्वी नहीं है क्यों कि गन्ध रहितहै वह कार्य नहीं है क्योंकि उसका कारण नहीं है वह ब्रह्मा इंद्र आदि ईश्वर नहीं है इस हेतुसे कि उसका नाश नहीं होता अर्थात् वह आत्मा न आकाश न वायु न अग्नि न जल न पृथ्वी कुछ नहीं है निश्चय केवल एक परिपूर्ण ब्रह्महै ॥ ६५ ॥

मूलं–आत्मानमात्मनों योगी पश्यत्यात्मनि निश्चितम् ॥ सर्वसंकल्पसंन्यासी त्यक्तमिथ्याभवग्रहः ॥ ६६ ॥

टीका–यह मिथ्या संसाररूपी गृहको त्यागके सर्व

संकल्पसे रहित होके योगी आत्मासे आत्माको आत्मामें देखता है ॥ ६६ ॥

मूलं-आत्मनात्मनि चात्मानं दृष्ट्वानन्तं सुखात्मकं ॥ विस्मृत्य विश्वं रमते समाधेस्तीव्रतस्तथा ॥ ६७ ॥

टीका-संसार विस्मृत्य करके अर्थात् भुलाके आत्मासे आत्माको आत्मारूप होके देखता और आत्माके आनन्द सुखरूपी तीव्र समाधिमें योगी रमण करता है ॥ ६७ ॥

मूलं-मायैव विश्वजननी नान्या तत्वधिया परा ॥ यदा नाशं समायाति विश्वं नास्ति तदा खलु ॥ ६८ ॥

टीका-माया संसारकी माता है अर्थात् मायासेही संसार उत्पन्न भयाहै यह निश्चय है कि दूसरा हेतु इसजगत्के उत्पत्तिका नहीं है ज्ञान करके इस मायाके नाश होनेसे संसारका अभाव निश्चय जानपडताहै ६८

मूलं-हेयं सर्वमिदं यस्य मायाविलसितं यतः ॥ ततो न प्रीतिविषयस्तनुवित्तसुखात्मकः ॥ ६९ ॥

टीका-यह झूठा मायाका प्रपंच विषयसुख धन शरीर है इनमें प्रीति करना उचित नहीं है यह सब त्यागनेके योग्यहै ॥ ६९ ॥

मूलं-अरिर्मित्रमुदासीनस्त्रिविधं स्यादिदं जगत् ॥ व्यवहारेषु नियतं दृश्यते नान्यथा पुनः ॥ ७० ॥

टीका-शत्रु मित्र उदासीनता यही तीन प्रकारके व्यवहाका प्रवाह इस संसारमें निश्चय देखपडताहै॥७०॥

मूलं-प्रियाप्रियादिभेदस्तु वस्तुषु नियतः स्फुटम्॥आत्मोपाधिवशादेवं भवेत्पुत्रादि नान्यथा ॥ ७१ ॥ मायाविलसितं विश्वं ज्ञात्वैवं श्रुतियुक्तितः॥ अध्यारोपापवादाभ्यां लयं कुर्वन्ति योगिनः ॥ ७२ ॥

टीका-और प्रिय अप्रिय यही दो भेदसे जगत् बंधा है ॥ आत्माके उपाधिसे पिता पुत्रादि होतेहैं यह जगत् मायासे विलसितहै यह श्रुति प्रमाणसे जानके योगी लोग अध्यारोप अपवादसे आत्मामें लय करतेहैं अर्थात् शुद्धचैतन्यका मनन करतेहैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

मूलं-कर्मजन्यं विश्वमिदं नत्वकर्मणि

वेदना ॥ निखिलोपाधिहीनो वै यदा
भवति पूरुषः ॥ ७३ ॥

टीका–इस जगत्‌की स्थिति कर्मसे है अर्थात् सुख दुःख जन्म मरण आदि क्लेशोंका कारण कर्महो है अकर्म हो जानेसे फिर कुछ दुःख नहीं है यावत् मायाके उपाधिको जब पुरुष जीतके उससे रहित होजाताहै ॥ ७३ ॥

मूलं–तदा विजयतेऽखंडज्ञानरूपी निरंजनः॥ सो हि कामयते पुरुषः सृजते च प्रजाः स्वयम् ॥ ७४ ॥

टीका–तब अखंड ज्ञानरूपी निरंजनका भान होताहै ॥ आत्मा अपने इच्छासे जगत् सृजता अर्थात् उत्पन्न करताहै ॥ ७४ ॥

मूलं–अविद्या भासते यस्मात्तस्मान्मिथ्या स्वभावतः ॥ शुद्धे ब्रह्मणि संबद्धो विद्यया सहजो भवेत् ॥ ७५ ॥

टीका–यह इच्छा अविद्याका कार्य है अविद्या नाम मिथ्याका है तो जब इच्छाही मिथ्या मायासे उत्पन्नहै तो उस इच्छाका कार्य कब सत्य होसक्ताहै तात्पर्य यह है कि मायाके उपाधिसे आत्माका यह इच्छाभूत

संसार मनोराज्यवत् है जैसे मनुष्यका मनोराज्य मि-
थ्या है उसी प्रकार आत्माका इच्छाभूत यह जगत्भी
मिथ्याहै शुद्धब्रह्ममें ज्ञानरूपी विद्याका संबन्धहै ॥७५॥

मूलं-ब्रह्मतेजोंऽशतो याति तत आभासते
नभः ॥ तस्मात्प्रकाशते वायुर्वायोरग्नि-
स्ततो जलम्॥७६॥ प्रकाशते ततः पृथ्वी
कल्पनेऽयंस्थितासति ॥ आकाशाद्वायु
राकाशपवनादग्निसंभवः ॥ ७७॥

टीका-उस ब्रह्मके तेज अंशसे आकाश उत्पन्न भया
आकाशसे वायु उत्पन्नभया वायुसे अग्नि उत्प्रन्नभया
अग्निसे जलभया जलसे पृथ्वी उत्पन्न भई यह कल्प
नाहै आकाशसे वायु उत्पन्न भया और आकाश
वायुसे तेज उत्पन्न भया ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

मूलं-खवाताग्नेर्जलं व्योमवाताग्निर्वारितो
मही ॥ खंशब्दलक्षणं वायुश्चंचलः स्पर्श-
लक्षणः ॥ ७८ ॥ स्याद्रूपलक्षणं तेजः
सलिलं रसलक्षणं ॥ गन्धलक्षणिका
पृथ्वी नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ ७९ ॥

विशेषगुणा स्फुरति यतः शास्त्रादि-निर्णयः ॥ शब्दैकगुणमाकाशं द्विगुणो वायुरुच्यते॥ ८० ॥तथैव त्रिगुणं तेजो भवन्त्यापश्चतुर्गुणाः ॥ शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसो गन्धस्तथैव च ॥ ८१ ॥ एतत्पंच-गुणापृथ्वीकल्पकैः कल्प्यतेऽधुना॥ चक्षुषा गृह्यते रूपं गन्धो घ्राणेन गृह्यते॥८२॥

टीका—और आकाश वायु अग्निसे जल उत्पन्न भया और इन चारोंसें पृथ्वी उत्पन्न भई शब्दगुण आकाश-काहै और चंचल स्पर्श दोगुण वायुकेहैं रूपगुण तेज-काहै रसगुण जलकाहै और पृथ्वीका गुण गंधहै इन पांचतत्त्वोंमें यह गुणजो ऊपर कहाहै विशेषहै यह शास्त्रसे निर्णय भयाहै अन्यथा नहीं है निश्चयहै आकाशमें एक शब्द गुणहै वायुमें दो गुणहैं अग्निमें तीन गुणहैं और जलमें चारगुणहैं पृथ्वीमें शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह पाचोंगुण कल्पितहैं नेत्र रूपको ग्रहण करताहै और नासिका गंध ग्रहण करतीहै ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

मूलं—रसो रसनया स्पर्शस्त्वचा संगृह्यते

परं ॥ श्रोत्रेण गृह्यते शब्दो नियतं भाति नान्यथा ॥ ८३ ॥

टीका-और जिह्वासे रस ग्रहण होताहैऔर स्पर्श त्वचा अर्थात् शरीरके चर्मसे ग्रहण होताहै वा बोधहोताहै और शब्द कर्णसे ग्रहण होताहै यह-निश्चयहै इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ८३ ॥

मूलं-चैतन्यात्सर्वमुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ अस्तिचेत् कल्पनेयं स्यान्नास्ति चेद-स्ति चिन्मयम् ॥ ८४ ॥

टीका-सब जगत चराचर उसी एक चैतन्यसे उत्पन्न भयाहै यदि संसार सत्य मानाजाय तो इस प्रकारसे कल्पना भईहै और जो संसारका अभावहै अर्थात् नहीं है तो वही एक चैतन्य आत्माहै और कुछ नहीं है ॥ ८४ ॥

मूलं-पृथ्वी शीर्णा जले मग्ना जलं मग्नञ्च तेजसि ॥ लीनं वायौ तथा तेजो व्योम्नि वातो लयं ययौ ॥ ८५ ॥

टीका-पृथ्वी जलमें मग्न अर्थात् लय होजाती है जल

अग्निमें लय भावको प्राप्त होताहै और अग्नि वायुमें लय होजाताहै और वायु आकाशमें लीन होजाताहै ॥८५॥

मूलं-अविद्यायां महाकाशो लीयते परमे पदे ॥ विक्षेपावरणाशक्तिर्दुरन्ता दुःख-रूपिणी ॥८६॥ जडरूपा महामाया रजः सत्त्वतमोगुणा ॥ सा मायावरणाशक्त्या वृताविज्ञानरूपिणी ॥ ८७ ॥

टीका-और आकाश अविद्यामें लयभावको प्राप्त होजाताहै और यह अविद्या माया भी परमपदको पहुंच जातीहै अर्थात् आत्मामें लय होजातीहै तात्पर्य यहहै कि जो उत्पन्न भयाहै उसका अवश्य नाशहै ईश्वरकी यह दो शक्ति विक्षेप और आवरण है इनका अंत नहींहै यह महामाया दुःखरूपिणीमें रज सत तम तीनों गुणहै समय समयपर इन गुणोंको धारण करलेतीहै सो माया आवरण शक्ति ज्ञानको आवृत करके अर्थात् छिपाके अज्ञानरूपिणी होजा तीहै ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

मूलं-दर्शयेज्जगदाकारं तं विक्षेपस्वभाव-तः॥तमोगुणाधिकाविद्या या सा दुर्गा भवे त्स्वयं॥८८॥ईश्वरं तदुपहितं चैतन्यं तद

भूर्द्धुवं ॥ सत्त्वाधिका च या विद्या लक्ष्मीः स्याद्दिव्यरूपिणी॥८९॥चैतन्यंतदुपहितं विष्णुर्भवति नान्यथा ॥ रजोगुणाधिका-विद्या ज्ञेया सा वै सरस्वती ॥ यश्चि त्स्वरूपो भवति ब्रह्मातदुपधारकः॥९०॥

टीका—और संसारके आकारको देखातीहै यह विक्षेप करना उसका स्वभावहै माया जब तमोगुण धारण करतीहै तब दुर्गारूप होके चैतन्य ईश्वरको उत्पन्न कर तीहै और जब सतोगुणको धारण करतीहै तब लक्ष्मी रूप होके चैतन्य जो विष्णुहैं उनको उत्पन्न करतीहै जब रजोगुणको धारण करतीहै तब सरस्वतीरूप होके चैतन्य जो ब्रह्माहैं उनको उत्पन्न करतीहै अर्थात् सबके उत्पत्तिका कारण यही जगन्माता महा मायाहै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

मूलं—ईशाद्याः सकला देवा दृश्यन्ते परमा-त्मनि ॥ शरीरादिजडं सर्वं सा विद्या तत्तथा तथा॥९१॥एवंरूपेण कल्पन्ते क-ल्पका विश्वसम्भवं॥तत्वातत्वं भवंतीह कल्पनान्येननोदिता ॥ ९२ ॥

टीका-हमारे आदि सकल देवता उसी एक परमात्मामें देख पडते हैं और शरीर आदि सब जड पदार्थ उसी एक विद्या अर्थात् आत्मामें भिन्न भिन्न जान पडतेहैं इसी तरह बुद्धिवान लोगोंनें संसारके स्थितिकी कल्पना कियाहै कि तत्त्व अतत्त्व दोनो भयाहै अर्थात् आत्मासेही सब सृष्टिकी उत्पत्तिहै केवल कल्पनामात्रहै और कुछ किसीने कहा नहीं हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

मूलं-प्रमेयत्वादिरूपेण सर्वं वस्तु प्रकाश्यते ॥ तथैव वस्तुनास्त्येव भासको वर्तकः परः ॥ ९३ ॥ स्वरूपत्वेनरूपेण स्वरूपं वस्तु भाष्यते ॥ विशेषशब्दोपादाने भेदो भवति नान्यथा ॥ ९४ ॥

टीका-प्रमेयरूप अर्थात् यावत् वस्तु संसारमें दृश्यमान है वह सबकें प्रकाशका कारण वही एक आत्माहै उपाधिभेदसे भिन्न भिन्न स्वरूप देख पडताहै विशेष करके नामभेदसे भेद है अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय दोनों वहीहै और कुछ नहीं है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

मूलं-एकः सत्तापूरितानन्दरूपः पूर्णो व्यापी वर्त्तते नास्ति किञ्चित् ॥ एतज्ज्ञानं

यःकरोत्येव नित्यं मुक्तः स स्यान्मृत्युसं-
सारदुःखात् ॥ ९५ ॥

टीका—एक सत्तामात्र पूरित आनन्द स्वरूप परि-
पूर्ण व्यापी सर्वदा वर्त्तमानहै और दूसरा कुछ नहीं है
ऐसा ज्ञान जिसको है और सर्वदा वह यही मनन कर-
ताहै सो मुक्त है अर्थात् संसारके जन्ममरण आदि
दुःखसे वह रहित है ॥ ९५ ॥

मूलं—यस्यारोपापवादाभ्यां यत्र सर्वे लयं-
गताः ॥ स एको वर्तते नान्यत् तच्चित्तेना-
वधार्यते ॥ ९६ ॥

टीका—जहां ज्ञानद्वारा संसारके कार्योंका लय
होजाता है अर्थात् उससे अभेद होजाते हैं उसी एक
सर्वदा वर्तमान आत्मामें मनको लय करे अर्थात्
आत्माकाही ध्यान धारण करे ॥ ९६ ॥

मूलं—पितुरन्नमयात्कोशाज्जायते पूर्वकर्म-
णः ॥ शरीरं वैजडं दुःखं स्वप्राग्भोगाय
सुन्दरम् ॥ ९७ ॥

टीका—पूर्वकर्मके अनुसार प्राणी पिताके अन्न-
मय कोशसे दुःख भोगनेके कारण जड शरीर सुन्दर
भोगरूप उत्पन्न होताहै ॥ ९७ ॥

मूलं-मांसास्थिस्नायुमज्जादिनिर्मितं भोग मन्दिरं ॥ केवलं दुःखभोगाय नाडीसंततिगुंफितम् ॥ ९८ ॥

टीका-मांस अस्थि स्नायु मज्जा आदि नाडियोंसे बंधा हुआ यह भोग मन्दिर अर्थात् शरीरके वलदुःखका कारणहै तात्पर्य यहहै कि ऐसा शरीर जिसके उत्पत्ति स्थितिके स्मरण करनेसैं घृणा होतीहै उसमें व्यर्थ मनुष्य मायामें फसके मोह और अभिमान करताहै॥ ९८॥

मूलं-पारमेष्ठ्यमिदं गात्रं पञ्चभूतविनिर्मितं ॥ ब्रह्माण्डसंज्ञकं दुःखसुखभोगाय कल्पितम् ॥ ९९ ॥

टीका-यह शरीर ब्रह्माके द्वारा पंचभूतसे निर्मित ब्रह्मांड संज्ञा सुख दुःख भोगनेके हेतु कल्पितहै॥ ९९॥

मूलं-बिन्दुः शिवो रजः शक्तिरुभयोर्मिलनात् स्वयम् ॥ स्वप्नभूतानि जायन्ते स्वशक्त्या जडरूपया ॥ १०० ॥

टीका-शिवरूप बिन्दु और शक्तिरूप रज इन दोनोंके संबन्धसे ईश्वरकी शक्ति जडरूपा महामाया अपने प्रभुतासे शरीरोंको उत्पन्न करती हैं ॥ १०० ॥

मूलं–तत्पञ्चीकरणात्स्थूलान्यसंख्यानि चराचरम् ॥ ब्रह्मांडस्थानि वस्तूनि यत्र जीवोऽस्तिकर्मभिः ॥ १०१ ॥ तद्भूतपञ्च-कात्सर्वं भोगाय जीवसंज्ञिता ॥ १०२ ॥

टीका–उसी पंचीकरणसे अनेक स्थूल वस्तु इस संसारमें चराचर उत्पन्न होती है यह जीवभी अपने कर्मके अनुसार भोग भोगनेके हेतु उसी पांच भूतसे जीवसंज्ञा करके प्रगट होता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

मूलं–पूर्वकर्मानुरोधेन करोमि घटनामहं ॥ अजडः सर्वभूतान्वै जडस्थित्याभुनक्ति तान् ॥ १०३ ॥

टीका–ईश्वर कहतेहैं कि प्राणीको पूर्व कर्मके अनु-सार हम उत्पन्न करतेहैं और सर्व भूतोंसे हम अजड अर्थात् भिन्न और अविनाशीहैं परंतु जडरूप होके सब को हम खाजाते हैं अर्थात् सबका नाश करतेहैं॥ १०३॥

मूलं–जडात्स्वकर्मभिर्बद्धो जीवाख्यो वि-विधो भवेत् ॥ भोगायोत्पद्यते कर्म ब्रह्मां-डाख्ये पुनः पुनः जीवश्च लीयते भोगाव साने च स्वकर्मणः ॥ १०४ ॥

टीका-जीव अपने कर्ममें बंधके नाना प्रकारके जड शरीर धारण करता है और अपने कर्मके फल भोगनेके हेतु संसारमें वारंवार उत्पन्न होता है और सब कर्मोंके अवसानमें अर्थात् जब ज्ञानद्वारा सब कर्मोंसे रहित होजाताहै तब उसी ज्ञानस्वरूप आत्मामें लय होजाताहै ॥ १०४ ॥

इतिश्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे लयप्रकरणे प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयपटलः

मूलं-देहेस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमान्वितः॥सरितःसागराःशैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥१॥ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि-ग्रहास्तथा ॥ पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्तेपीठदेवताः ॥ २ ॥

टीका-प्राणीके इस शरीरमें सप्तद्वीप सहित सुमेरुहै और नदी समुद्र आदि पर्वत और क्षेत्र क्षेत्रपाल ऋषि मुनि और सब नक्षत्र ग्रह पुण्यतीर्थ और पीठ देवता आदि सब इसी शरीरमें वर्तमानहैं तात्पर्य यह है कि मनुष्य तीर्थोंमें स्नान दर्शनके हेतु भटकता फिरताहै परंतु इस शरीरस्थ तीर्थ और देवताको नहीं जानता न

मनको शुद्ध करके उनके जाननेमें प्रयास करताहै॥२॥

मूलं–सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौशशिभा-
स्करौ ॥ नभोवायुश्चवह्निश्च जलंपृथ्वी-
तथैवच ॥ ३ ॥

टीका–सृष्टिके स्थिति संहारके कर्ता चन्द्रमा और सूर्य इस शरीरमें भ्रमण करते हैं और आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी अर्थात् पांचोंतत्त्व सर्वदा शरीरमें वर्तमान रहतेहैं तात्पर्य यहहै कि सब इसी शरीरमें हैं परंतु विना गुरुकी कृपा के देख नहीं पडते ॥ ३ ॥

मूलं–त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि
देहतः॥मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रव
र्तते ॥ जानातियः सर्वमिदं स योगीना
त्रसंशयः ॥ ४ ॥

टीका–जो त्रैलोक्यमें चराचर वस्तुहैं सो सब इसी शरीरमें मेरुके आश्रय होके सर्वत्र अपनें २ व्यवहार को वर्ततेहैं जो मनुष्य यह सब जानताहै सो योगीहै इसमें संशय नहीं हैं ॥ ४ ॥

मूलं–ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यव-
स्थितः ॥ मेरुशृंगे सुधारश्मिर्बहिरष्टक-
लायुतः ॥५॥

टीका-यह शरीर ब्रह्माण्ड संज्ञाहै जिस तरह संसारमें सब देश और सुमेरु पर्वतहै उसी तरह शरीरमें मेरुहै उसके ऊपर सुधाकर अर्थात् चन्द्रमा आठकलासे स्थितहै ॥ ५ ॥

मूलं-वर्त्ततेऽहर्निशं सोऽपि सुधावर्षत्यधोमुखः ॥ ६ ॥ ततोऽमृतं द्विधाभूतं याति सूक्ष्मं यथा चवै ॥ इडामार्गेण पुष्ट्यर्थं याति मन्दाकिनीजलं ॥ पुष्णाति सकलं देहमिडामार्गेण निश्चितम् ॥ ७ ॥

टीका-सोई चन्द्रमा रात्रि दिवस अधोमुख होके अमृतकी वर्षा करतेहैं वह अमृत सूक्ष्म दो भाग हो जाताहै सो मन्दाकिनीके जलके समान देहके रक्षार्थ इडाजो वामनाडीहै उसके रन्ध्रसे सकल शरीरको पोषण करताहै ॥ ७ ॥

मूलं-एष पीयूषरश्मिर्हि वामपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ ८ ॥ अपरः शुद्धदुग्धाभो हठात्कर्षति मण्डलात् ॥ रन्ध्रमार्गेण सृष्ट्यर्थं मेरौ संयाति चन्द्रमाः ॥ ९ ॥

टीका-वही सुधाकीर्ण संयुक्त इडा नाडीकी स्थिती वाम भागमें है और शुद्ध दूधके समान मेरुमें चन्द्रमा

प्रसन्नतापूर्वक अपने मण्डलसे इडाके रन्ध्र मार्गसे आ-
यके देहाका पोषण करतेहै ॥ ९ ॥

मूलं–मेरुमूले स्थितः सूर्यः कलाद्वादशसं-
युतः ॥ दक्षिणे पथि रश्मिभिर्वहत्यूर्ध्वं प्र-
जापतिः ॥ १० ॥

टीका–मेरुदण्डके मूलमें अर्थात् नीचे बारह कला
संयुक्त सूर्य स्थितहैं दक्षिणपथ अर्थात् पिङ्गलानाडी
द्वारा प्रजापति स्वरूपकी गति ऊपरकोंहै ॥ १० ॥

मूलं–पीयूषरश्मिनिर्यासं धातूंश्च ग्रसति
ध्रुवं ॥ समीरमण्डले सूर्यो भ्रमते सर्ववि-
ग्रहे ॥ ११ ॥

टीका–सूर्य अमृतधातुको अपने कीर्ण शक्तिसे
ग्रास करजातेहैं और वायुमण्डलके साथ सब शरीरमें
भ्रमण करतेहैं ॥ ११ ॥

मूलं–एषासूर्यपरामूर्तिर्निर्वाणं दक्षिणे प
थि ॥ वहते लग्नयोगेन सृष्टिसंहारका-
रकः ॥ १२ ॥

टीका–यह सूर्यकी अपर निर्वाण मूर्तिहै अर्थात्
पिङ्गलानाडी दक्षिणभागमें स्थितहै सूर्य सृष्टि संहार
करता लग्नयोगसे नाडीद्वारा प्रवाह करतेहै ॥ १२ ॥

मूलं-सार्धलक्षत्रयं नाड्यःसन्तिदेहान्तरे-नृणां ॥ प्रधानभूतां नाड्यस्तु तासुमु-ख्याश्चतुर्दश ॥ १३ ॥ सुषुम्णेडा पिंगला च गांधारी हस्तिजिह्विका ॥ कुहू सरस्व-ती पूषा शंखिनी च पयस्वनी ॥ १४ ॥ वा-रुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्वनी ॥ एतासु तिस्रो मुख्याःस्युःपिङ्गलेडा सु-षुम्णिका ॥ १५ ॥

टीका-शरीरमें बहुत नाडीहै परंतु उनमें प्रधान नाडी साढेतीन लक्षहैं उनमेंसे मुख्य यह चौदह ना डीहै १ सुषुम्णा २ इडा ३ पिङ्गला ४ गान्धारी ५ हस्त-जिह्वा ६ कुहु ७ सरस्वती ८ पूषा ९ शंखिनी १० पय-स्विनी११ वारुणा १२ लंबुषा १३ विश्वोदरी १४ यश-स्वनी इन चौदहमें भी तीन नाडी मुख्यहैं इडा, पिङ्ग-ला, सुषुम्णा ॥ १५ ॥

मूलं-तिसृष्वेका सुषुम्णैव मुख्या सा योगिवल्लभा ॥ अन्यास्तदाश्रयं कृत्वा नाड्यः सन्तिहि देहिनाम् ॥१६॥

टीका-इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा इन तीन नाडीमें भी

एकही सुषुम्णा मुख्यहै इस कारणसे कि परंपदकी दाताहै योगी लोगोंको हितकारी है अन्य नाडी उसके आश्रय शरीरमें रहती हैं ॥ १६ ॥

मूलं—नाडचस्तु ता अधोवदनाःपद्मतन्तु-
निभाः स्थिताः ॥ पृष्ठवंशं समाश्रित्य
सोमसूर्याग्निरूपिणी ॥ १७ ॥

टीका—यह तीनों नाडी अधोवदनाहैं अर्थात् नीचेको मुखकमलतन्तुके सदृशहै और चन्द्र सूर्य अग्निके समानहैं अर्थात् इडा चन्द्ररूप और पिङ्गला सूर्यरूप और सुषुम्णा अग्निरूपहै यह तीनों नाडी मेरुदंडके आश्रय स्थितहैं ॥ १७ ॥

मूलं—तासां मध्ये गता नाडी चित्रा सा मम
वल्लभा ॥ ब्रह्मरन्ध्रञ्च तत्रैव सूक्ष्मात् सू-
क्ष्मतरं शुभम् ॥ १८ ॥

टीका—उस तीनों नाडीके मध्यमें जो चित्रानाडी है वह हमको प्रिय है उसी स्थानमें बहुत सूक्ष्म ब्रह्मरंध्र शोभायमानहै ॥ १८ ॥

मूलं——पञ्चवर्णोज्ज्वला शुद्धा सुषुम्णा
मध्यचारिणी ॥ देहस्योपाधिरूपा सा
सुषुम्णा मध्यरूपिणी ॥ १९ ॥

टीका-वह चित्रानाडी पंचवर्ण अति उज्ज्वल शुद्ध है और देहके उपाधिका कारण भी वही सुषुम्णान्तरगता अर्थात् चित्रानाडी है तात्पर्य यह है कि आत्मस्वरूप वही है ॥ १९ ॥

मूलं-दिव्यमार्गमिदं प्रोक्तममृतानन्दकारकम् ॥ ध्यानमात्रेण योगींद्रो दुरितौघं विनाशयेत् ॥ २० ॥

टीका-यह मार्ग बहुत श्रेष्ठ अमृतानन्दकारक मुक्तिका दाता हमनें कहाहै जिसके ध्यानमात्रसे योगी लोगोंके पापका समूहनाश होजाताहै ॥ २० ॥

मूलं-गुदात्तुद्यङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रात्तुद्यङ्गुलादधः ॥ चतुरङ्गुलविस्तार माधारं वर्तते समम् ॥ २१ ॥

टीका-गुदासे दो अंगुल ऊपर और मेढ्रसे दो अंगुल नीचे मध्यमें चार अंगुल विस्तार आधारपद्म है ॥ २१ ॥

मूलं-तस्मिन्नाधारपद्मे च कर्णिकायां सुशोभना ॥ त्रिकोणा वर्त्तते योनिः सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥ २२ ॥

टीका-उस आधारपद्मके कर्णिकामें अर्थात् डंठीमें

त्रिकोणयोनिहै यह योनि सब तंत्रो करके गोपितहै अर्थात् इसके प्रकाशकरनेकी आज्ञा किसी शास्त्रमें नहीं है ॥ २२ ॥

मूलं-तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता॥सार्द्धत्रिकाराकुटिला सुषुम्णा मार्ग संस्थिता ॥ २३ ॥

टीका-उसी स्थानमें कुण्डलनी देवता साढेतीन आवृत कुटिला अर्थात् टेढी जिसकी प्रभा विद्युतके समान है सुषुम्णाके मार्गमें स्थितहै ॥ २३ ॥

मूलं-जगत्संसृष्टिरूपा सा निर्माणे सततोद्यता ॥ वाचामवाच्या वाग्देवी सदा देवैर्नमस्कृता ॥ २४ ॥

टीका-सोई कुण्डलनी जगत्के बहुत प्रकारसे उत्साह पूर्वक रचना करनेकी रूपहै और वाग्देवी है अर्थात् उसीसे वाक्यका उच्चारण होताहै इस कुण्डलनी देवीको देवतालोग नमस्कार करतेहैं ॥ २४ ॥

मूलं-इडानाम्नी तु या नाडी वाममार्गे व्यवस्थिता ॥ सुषुम्णायां समाश्लिष्य दक्षनासापुटे गता ॥ २५ ॥

टीका-जो इडा नाम नाडी वामभागमें है वह सु-

षुम्णाको आवृत करती हुई अर्थात् उससे मिली हुई नासिकाके दक्षिणद्वारको गई है ॥ २५ ॥

मूलं–पिङ्गला नाम या नाडी दक्षमार्गे व्यवस्थिता ॥ सुषुम्णासा समाश्लिष्य वामनासापुटे गता ॥ २६ ॥

टीका–दक्षिणमार्गमें जो पिङ्गला नाडीहै वह सुषुम्णाके आसरे होके नासिकाके वामद्वारको गई है॥२६॥

मूलं–इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत् खलु ॥ षट्स्थानेषु च षट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः ॥ २७ ॥

टीका–इडा पिङ्गलाके मध्यमें सुषुम्णाहै इस सुषुम्णाके छः स्थानमें छः शक्ती हैं इनके नाम यहहैं डाकिनी, हाकिनी, काकिनी, लाकिनी, राकिनी, शाकिनी, और इन्हीं छः स्थानमें छःपद्महैं उनके नाम यह हैं आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, यह अपने ज्ञानसे योगी लोग जानतेहैं ॥ २७ ॥

मूलं–पंचस्थानं सुषुम्णाया नामानि स्युर्बहूनि च ॥ प्रयोजनवशात्तानि ज्ञातव्यानीह शास्त्रतः ॥ २८ ॥

टीका—सुषुम्णाके पांच स्थानहैं उनके नाम बहुत हैं प्रयोजनसे शास्त्रकरके जाना जाताहै ॥ २८ ॥

मूलं—अन्या याऽस्त्यपरानाडी मूलाधारा-त्समुत्थिताः॥ रसनामेढ्र नयनं पादांगुष्ठे च श्रोत्रकम् ॥ २९ ॥ कुक्षिकक्षांगुष्ठकर्णं सर्वांगं पायुकुक्षिकम्॥ लब्ध्वांता वै निव-र्तन्ते यथादेशसमुद्भवाः ॥ ३०॥

टीका—और अन्य नाडी मूलाधारसे उठीहैं और जीह्वा, मेढ्र, नेत्र, पादका अङ्गुष्ठ, कर्ण, कुक्षि, कक्ष, हस्ताङ्गुष्ठ, पायु, उपस्थ, इन सब अङ्गोमें इनका अन्त भयाहै अर्थात् मूलाधारसे उत्पन्न होके अपने अपने स्थानमें जाके निवृत्त होगई है ॥ २९ ॥ ३० ॥

मूलं—एताभ्य एव तु नाडीभ्यः शाखोपशा-खतः क्रमात् ॥ सार्धलक्षत्रयं जातं यथा भागं व्यवस्थितम् ॥ ३१॥ एता भोगवहा नाड्यो वायुसञ्चारदक्षकाः ॥ ओतप्रोता भिसंव्याप्यतिष्ठन्त्यस्मिन् कलेवरे ॥ ३२॥

टीका—इन्हीं नाडियोंमेंसे साखोपसाख क्रमसे साढेतीनलक्ष नाडी उत्पन्न होके अपने अपने स्थानमें स्थित हैं यह सब भोग वहानाडी वायुके संचारमें

दक्षहैं ओतप्रोत अर्थात् संयोग वियोगसे इस शरीरमें व्याप्त हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मूलं-सूर्यमण्डलमध्यस्थः कला द्वादश संयुतः॥ बस्तिदेशे ज्वलद्वह्निर्वर्तते चान्नपाचकः ॥ ३३ ॥ वैश्वानराग्निरेषो वै मम तेजोंशसम्भवः ॥ करोति विविधं पाकं प्राणिनां देहमास्थितः ॥ ३४ ॥

टीका-द्वादशकला संयुक्त सूर्यमण्डलके मध्यमें प्रज्वलित अग्निहै सो बस्तिदेशमें अन्नका पाचन करती है वह वैश्वानर अग्नि हमारे तेजसे उत्पन्न है प्राणीके शरीरमें स्थित होकर नाना प्रकारका पाक करता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मूलं-आयुः प्रदायको वह्निर्बलं पुष्टिं ददाति सः ॥ शरीरपाटवञ्चापि ध्वस्तरोग समुद्भवः ॥ ३५ ॥

टीका-सो वैश्वानर अग्नि आयु और बल और पुष्टता और शरीरमें कान्तिका देनेवालाहै और यावत् रोगोंको नाश करनेवाला है ॥ ३६ ॥

मूलं-तस्माद्वैश्वानराग्निञ्च प्रज्वाल्य वि

धिवत्सुधीः ॥ तस्मिन्नन्नं हुनेद्योगी प्रत्य-
हं गुरुशिक्षया ॥ ३६ ॥

टीका-इस वैश्वानर अग्निको गुरुके शिक्षापूर्वक प्रज्वलित करके नित्य उसमें अन्नका होम करै अर्थात् भोजन करै ॥ ३६ ॥

मूलं-ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे स्थानानि स्युर्बहू
नि च ॥ मयोक्तानि प्रधानानि ज्ञातव्या-
नीह शास्त्रके ॥३७॥ नानाप्रकारनामानि
स्थानानि विविधानि च ॥ वर्तन्ते विग्रहे
तानि कथितुं नैव शक्यते ॥ ३८ ॥

टीका-यह शरीर ब्रह्माण्ड संज्ञाहै इसमें बहुत स्थानहैं हमने प्रधान प्रधान स्थान कहाहै यह शास्त्रसे जान जाताहै बहुत प्रकारके स्थान और नाम उन स्थानोंकेहैं जो इस शरीरमें वर्तमानहैं उनके वर्णन करनेके हम शक्य नहींहै अर्थात् बहुत विस्तारहै उसके कहनेमें व्यर्थ परिश्रमहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मूलं-इत्थं प्रकल्पिते देहे जीवो वसति स-
र्व्वगः॥अनादिवासनामालाऽलंकृतःकर्म-
शृङ्खलः ॥ ३९ ॥

टीका-इसी तरह शरीर कल्पितहै और जीव पूर्व

वासनारूपी बेडीमें फसके मालाके तरह घाघूमा करताहै ॥ ३९ ॥

मूलं–नानाविधगुणोपेतः सर्वं व्यापार कारकः॥पूर्वार्जितानि कर्माणि भुनक्ति विविधानिच ॥ ४० ॥

टीका–सोई जीव नानाप्रकारके गुण ग्रहण करताहै और संसारमें बहुत प्रकारके व्यापार करताहै यह सब पूर्वार्जित शुभाशुभ कर्मके फल भोगताहै ॥ ४० ॥

मूलं–यद्यत्संदृश्यते लोके सर्वं तत्कर्मसम्भवम् ॥ सर्वः कर्मानुसारेण जन्तुर्भोगान् भुनक्ति वै ॥ ४१ ॥

टीका–जो जो शुभाशुभ कर्म संसारमें देख पड ताहै वह सबका आदिकारण कर्महीहै प्राणीमात्र अपने कर्मके अनुसार भोग भोगताहै ॥ ४१ ॥

मूलं–ये ये कामादयो दोषाः सुखदुःखप्रदायकाः॥ ते ते सर्वे प्रवर्तन्ते जीवकर्मानुसारतः ॥ ४२ ॥

टीका–जो जो काम क्रोध आदिसे सुख दुःख होताहै सो सब जीव अपने कर्महीके अनुसार वर्तताहै ॥४२॥

मूलं-पुण्योपरक्तचैतन्ये प्राणान् प्रीणाति केवलं ॥ बाह्ये पुण्ययमं प्राप्य भोज्यवस्तुस्वयम्भवेत् ॥ ४३ ॥

टीका-पुण्यकर्मके अनुष्ठान करनेसे प्राणीको सुख होताहै और बाह्य वस्तु श्रेष्ठ भोजन आदि नानाप्रकारकी वस्तु आपही मिल जातीहै ॥ ४३ ॥

मूलं-ततःकर्मबलात्पुंसः सुखं वा दुःखमेव च ॥ पापोपरक्तचैतन्यं नैव तिष्ठति निश्चितम् ॥४४॥ न तद्भिन्नो भवेत् सोऽपि तद्भिन्नो न तु किञ्चन॥मायोपहितचैतन्यात्सर्वं वस्तु प्रजायते ॥ ४५ ॥

टीका-यह प्राणी अपने कर्मके बलसे सुख वा दुःख भोगताहै जीव जब पापमें आसक्त होताहै तब दुःख भोगताहै फिर उसको सुखलाभ नहीं होता जीव अपने कर्मके अनुसार सुख वा दुःख भोगताहै इसमें भिन्नता नहींहै अर्थात् करता भोगतामें भेद नही चैतन्य आत्मा जब मायोपहित होताहै तब सब वस्तु उत्पन्न होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

मूलं-यथाकालेपि भोगाय जन्तूनां विवि-

धोद्भवः॥ यथा दोषवशाच्छुक्तौ रजता-
रोपणं भवेत्॥ तथा स्वकर्मदोषाद्वै ब्रह्म-
ण्यारोप्यते जगत्॥ ४६ ॥

टीका-जैसा काल भोगके हेतु निश्चय रहताहै उ-
समें प्राणी नानाप्रकारसे भोगभोगनेके लिये उत्पन्न
होताहै जैसे नेत्रके विकारके कारणसे सीपीमें चांदीका
आरोप होताहै वैसेही अपने कर्मके दोषसे प्राणी ब्र-
ह्ममें मिथ्या जगतका आरोप करताहै ॥ ४६ ॥

मूलं-स वासनाभ्रमोत्पन्नोन्मूलनातिसम-
र्थनम् ॥ उत्पन्नश्चेदीदृश्यं स्यात् ज्ञानं
मोक्षप्रसाधनम्॥ ४७॥

टीका-वासनासे भ्रम उत्पन्न होताहै जब तक
वासनाकी जड नहीं जाती तब तक कदापि भ्रम दूर
नही होता इसी तरह जब ज्ञान उत्पन्न होताहै तब
कुछ नही रह जाता इस हेतुसे ज्ञानही मोक्षका
साधनहै ॥ ४७ ॥

मूलं-साक्षाद्वैशेषदृष्टिस्तु साक्षात्कारिणि
विभ्रमे ॥ करणं नान्यथा युक्त्या सत्यं
सत्यं मयोदितम्॥ ४८॥

टीका-विशेष करके दृष्टीसे साक्षात् जो देख पड

ताहै वही साक्षात् भ्रमका कारणहै अर्थात् इसी साक्षा तमे मनुष्य फसाहै मायाके आवरणसे बुद्धी आगे नही जाती और दुसरा कारण कुछ नहीहै यह हम सत्य कहतेहैं ॥ ४८ ॥

मूलं–साक्षात्कारिभ्रमे साक्षात् साक्षात् कारिणि नाशयेत् ॥ सोहिनास्तीति संसारे भ्रमो नैव निवर्तते ॥ ४९ ॥

टीका–यह साक्षात् घटपट आदिका भ्रम ब्रह्मके प्रत्यक्ष होनेसे नाश होताहै विना आत्माके प्रत्यक्ष भये ब्रह्म संसारमें नहीं है यह भ्रम नही निवृत्त होता॥४९॥

मूलं–मिथ्याज्ञाननिवृत्तिस्तु विशेषदर्शना-द्भवेत् ॥अन्यथा न निवृत्तिः स्याद् दृश्य-ते रजतभ्रमः ॥ ५० ॥

टीका–यह मिथ्या संसारका ज्ञान आत्माका विशे-ष दरशन होनेसे निवृत्त होताहै और किसी प्रकार इस अज्ञानकी निवृत्ति नही होती जैसे सीपीमें चांदीका भ्रम बिना सीपीके निश्चय भये दूर नही होता ॥ ५०॥

मूलं–यावन्नोत्पद्यते ज्ञानं साक्षात्कारे निरञ्जने ॥ तावत् सर्वाणि भूतानि दृश्य न्ते विविधानि च ॥ ५१ ॥

टीका-जबतक आत्माका साक्षात्कार ज्ञान नहीं होता तबतक सब प्राणी संसार आदि नाना प्रकारके देख पडते हैं ॥ ५१ ॥

मूलं-यदा कर्मार्जितं देहं निर्वाणे साधनं भवेत् ॥ तदा शरीरवहनं सफलं स्यान्न चान्यथा ॥ ५२ ॥

टीका-जो यह कर्मार्जित शरीरहै इससे निर्वाण अर्थात् आत्मज्ञानका साधन होय तब इसका जन्म और स्थिती सुफलहै नहीं तो व्यर्थहै तात्पर्य यहहै कि जिस मनुष्यको आत्मज्ञान नही हुआ या इस विषयका उसनें साधन नहीं किया उसका जन्म केवल माताके दुःख देने और पृथ्वीपर भारके हेतु भया ५२॥

मूलं-यादृशी वासना मूला वर्त्तते जीवसंगिनी ॥ तादृशं वहते जन्तुः कृत्याकृत्यविधौ भ्रमम् ॥ ५३ ॥

टीका-जैसी वासना जीवके संग रहती है वैसेही प्राणी शुभाशुभ कर्म भ्रमके वश होके करताहै और उसी वासनासे उत्पन्न और नाश होता रहताहै ॥ ५३ ॥

मूलं-संसारसागरं तर्त्तुं यदीच्छेद्योगसाधकः ॥ कृत्वावर्णाश्रमं कर्म फलवर्जं तदाचरेत् ॥ ५४ ॥

टीका-योगसाधक यदि संसारसे तरनेकी इच्छा करे तो यावत् वर्णाश्रमका कर्म फलरहित करना उचित है ॥ ५४ ॥

मूलं-विषयासक्तपुरुषा विषयेषु सुखेप्सवः ॥ वाचाभिरुद्धनिर्वाणा वर्तन्ते पापकर्मणि ॥ ५५ ॥

टीका-विषयासक्त पुरुष सुख और विषयके इच्छा में सर्वदा रहते हैं और पापकर्ममें ऐसे तत्पर रहते हैं कि वाक्यभी उनका परमार्थ विषयमें रुद्ध रहताहै अर्थात् मोक्षका साधनतो बहुत दूरहै परन्तु परमार्थके चर्चासेभी उनको ज्वर चढताहै ॥ ५५ ॥

मूलं-आत्मानमात्मनापश्यन्न किञ्चिदिह पश्यति ॥ तदा कर्मपरित्यागे न दोषोऽस्ति मतं मम ॥ ५६ ॥

टीका-जब ज्ञानी आत्मासे आत्माको देखे और सब वस्तुका अभाव जानपडे तब कर्मको त्यागदेनेमें कुछ दोष नहीं है यह हमारा मतहै ऐसा श्रीशिवजी जगन्माता पार्वतीजीसे कहते हैं ॥ ५६ ॥

मूलं-कामादयो विलीयन्ते ज्ञानादेव न चान्यथा ॥ अभावे सर्वतत्त्वानां स्वयंतत्त्वं प्रकाशते॥ ५७॥

टीका–ज्ञानमें काम क्रोधादि सकल पदार्थ लय होजाताहै इसमें अन्यथा नहीं है जब स्वयंतत्व अर्थात् आत्मज्ञान प्रकाश होताहै तब सब तत्वका अभाव हो जाताहै ॥ ८७ ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगप्रकथने तत्त्वज्ञानोपदेशो नाम द्वितीयः पटलः

अथ तृतीयपटलः ।

मूलं–हृद्यस्ति पङ्कजं दिव्यं दिव्यलिङ्गने भूषितम् ॥ कादिठान्ताक्षरोपेतं द्वादशार्ण विभूषितम् ॥ १ ॥

टीका–प्राणीके हृदयस्थानमें एक पद्म सुन्दर दिव्यलिङ्गसे शोभायमानहै यह पद्म क-से-ठ तक द्वादश वर्ण करके शोभित है अर्थात् क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठ ॥ १ ॥

मूलं–प्राणो वसति तत्रैव वासनाभिरलंकृतः ॥ अनादिकर्मसंश्लिष्टः प्राप्याहङ्कार संयुतः ॥ २ ॥

टीका–उसी पद्ममें प्राणकी स्थितिहै और अनादि कर्म अहंकार संयुक्त वासनासे अलंकृतहै ॥ २ ॥

मूलं-प्राणस्य वृत्तिभेदेन नामानि विविधानि च ॥ वर्तन्ते तानि सर्वाणि कथितुं नैव शक्यते ॥ ३ ॥

टीका-प्राणके वृत्ति भेदसे जो इस शरीरमें वायु वर्तमानहैं उनके बहुतप्रकारके नामहैं जिनके वर्णन करनेको हम शक्य नहीं हैं अर्थात् यहां उनके वर्णनका प्रयोजन नहीं है ॥ ३ ॥

मूलं-प्राणोऽपानः समानश्चोदानो व्यानश्च पञ्चमः ॥ नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ४ ॥ दश नामानि मुख्यानि मयोक्तानीह शास्त्रके ॥ कुर्वन्ति तेऽत्र कार्याणि प्रेरितानि स्वकर्मभिः ॥ ५ ॥

टीका-प्राणके मुख्य भेदोंका नाम प्राण अपान समान, उदान, पांचवां व्यान और नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय, यह दश वायु मुख्यहैं हम शास्त्र प्रमाणसे कहतेहैं शरीरमें यह वायु अपने कर्मसे प्रेरित होके कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूलं-अत्रापि वायवः पञ्च मुख्याः स्युर्दशतः पुनः ॥ तत्रापि श्रेष्ठकर्त्तारौ प्राणापानौ मयोदितौ ॥ ६ ॥

टीका—वह दश वायुमें पांच मुख्यहैं फिर उनमेंभी निश्चय करकें श्रेष्ठ करता श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि हमनें प्राण और अपानको कहाहै ॥ ६ ॥

मूलं—हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले ॥ उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ७ ॥ नागादिवायवः पञ्च कुर्वन्ति ते च विग्रहे ॥ उद्गारोन्मीलनं क्षुत्तृट् जृम्भा हिक्का च पञ्चमः ॥ ८ ॥

टीका—हृदय स्थानमें प्राणकी स्थिति है और गुदामें अपान और नाभिमण्डलमें समान और कण्ठमें उदान और व्यान सब शरीरमें व्याप्तहै और नाग आदि जो पांच वायु हैं वह शरीरमें डकार हिचकी जंभाई क्षुधा पिपासा उन्मीलन अर्थात् निद्राके समय जो नेत्रके बंद होजानेका हेतु है यह सब कार्य करतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

मूलं—अनेन विधिना यो वै ब्रह्माण्डं वेत्ति विग्रहं ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ९ ॥

टीका—इस विधानसे जो पाहिले कहाहै शरीरको जो मनुष्य ब्रह्माण्ड जानताहै वह सर्व पापसे मुक्त होके

परमगतिको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्ष होताहै ॥ ९ ॥

मूलं—अधुना कथयिष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ॥ यज्ज्ञात्वा नावसीदन्ति योगिनो योगसाधने ॥ १० ॥

टीका—अब जो हम कहते हैं इस विधिसे बहुत शीघ्रमें योग सिद्ध होताहै और इसके जान लेनेसे योगीको योग साधनमें कष्ट नहीं होता ॥ १० ॥

मूलं—भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा ॥ अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा ॥ ११ ॥

टीका—जो विद्या गुरुके मुखसे सुनी वा जानी जातीहै वह वीर्यवती होताहै और अन्य प्रकारसे विद्या फलहीन निर्वीर्या और अतिदुःखकी देनेवाली होतीहै तात्पर्य यहहै कि योगविद्या वा अन्यविद्या भले प्रकार गुरूसे जानकरके करना उचितहै जो लोग पुस्तकसे वा किसीको करते देखते योगादिक क्रिया आरम्भ करदेते हैं उनका कल्याण नहीं होता यथार्थ न जाननेसे कष्टही होताहै ॥ ११ ॥

मूलं—गुरुं सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते ॥ अविलम्बेन विद्यायास्तस्याः फलमवाप्नुयुः ॥ १२ ॥

टीका-गुरुको सब तरहसे प्रसन्न करकें जो विद्या मिलतीहै उस विद्याका फल शीघ्र होताहै अर्थात् थोडे कालमें सिद्ध होजातीहै ॥१२॥

मूलं-गुरुःपितागुरुर्माता गुरुर्देवो न संशयः ॥ कर्मणा मनसा वाचा तस्मात् सर्वैः प्रसेव्यते ॥ १३ ॥ गुरुप्रसादतः सर्वं लभ्यते शुभमात्मनः ॥ तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत् ॥१४ ॥ प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा स्पृष्ट्वा सव्येन पाणिना‌म् ॥ अष्टांगेन नमस्कुर्याद्गुरुपादसरोरुहम् ॥ १५

टीका-गुरु पिता और गुरु माता और गुरु देवताहै इसमें संशय नहींहैं इस हेतुसे गुरुको कर्मसे मनसे वाक्यसे सब प्रकारसे सेवा करना उचितहै गुरुके प्रसादसे आत्माका सब शुभ होजाता है इसलिये गुरु की नित्य सेवा करना उचितहै दूसरे तरह शुभ नहीं है गुरुको तीन प्रदाक्षणा करके दक्षिण हाथसे स्पर्श करके गुरुके चरण कमलमें साष्टांग नमस्कार करना उचित है ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूलं-श्रद्धयात्मवतां पुंसां सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ अन्येषाञ्च न सिद्धिः स्यात्तस्माद् यत्नेन साधयेत् ॥ १६ ॥

टीका-जिस पुरुषको श्रद्धाहै उसको निश्चय करके विद्या सिद्ध होती है दूसरेको नहीं होती इस हेतुसे साधकको उचितहै कि यत्नसे साधन करे ॥ १६ ॥

मूलं-न भवेत् संगयुक्तानां तथा विश्वासिनामपि॥ गुरुपूजाविहीनानां तथा च बहुसंगिनाम् ॥ १७॥ मिथ्यावादरतानां च तथा निष्ठुरभाषिणाम् ॥गुरुसन्तोषहीनानां न सिद्धिः स्यात् कदाच न ॥ १८॥

टीका-जिस पुरुषका किसी व्यवहारी मनुष्यसे अतिसङ्गहै उसको योगविद्या सिद्ध नहीं होती ऐसेही अविश्वासी और जो गुरुपूजासे हीनहैं और जिनका बहुत लोगोंसे सङ्ग है और वह लोग जो झूठ और कठोर वचन बोला करते हैं और वह लोग जो गुरुको प्रसन्न नहीं करते इन लोगोंको कदापि सिद्धि नहीं होती ॥ १७ ॥ १८ ॥

मूलं-फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम्॥द्वितीयं श्रद्धया युक्तं तृतीयं गुरुपूजनम्॥ १९॥चतुर्थं समताभावं पञ्चमेन्द्रियनिग्रहम्॥ षष्ठं च प्रमिताहारं सप्तमं नैव विद्यते ॥ २० ॥

टीका–योग सिद्धि होनेका प्रथम लक्षण यहहै कि उसके सिद्धिमें विश्वासहो दूसरे श्रद्धायुक्त तीसरे गुरु पूजा रतहो चौथे प्राणीमात्रमें समताभाव रक्खे पांचवें इन्द्रियोंका निग्रह रहे छठवें परमित भोजन करै यह छः लक्षण योग सिद्धिकेहैं और सातवाँ नहीं हैं॥ १९ ॥ २० ॥

मूलं–योगोपदेशं संप्राप्य लब्ध्वा योगविदं गुरुम् ॥ गुरूपदिष्टविधिना धिया निश्चित्य साधयेत् ॥ २१ ॥

टीका–योगवेत्ता गुरुसे योग उपदेश लेके जिस विधिसे गुरु उपदेश करे उस विधिसे बुद्धि निश्चय करके साधन करे ॥ २१ ॥

मूलं–सुशोभने मठे योगी पद्मासनसमन्वितः ॥ आसनोपरि संविश्य पवनाभ्यासमाचरेत् ॥ २२ ॥

टीका–उपद्रव रहित सुन्दर स्वच्छ और उसका सूक्ष्म रन्ध्र होय उसमठमें पद्मासनसंयुक्त आसनपर बैठके योगी पवनका अभ्यास करे ॥ २२ ॥

मूलं–समकायः प्राञ्जलिश्च प्रणम्य च गुरून् सुधीः ॥ दक्षे वामे च विघ्नेशं क्षेत्रपालांबिकां पुनः ॥ २३ ॥

टीका-समकायः अर्थात् सीधा शरीर करके हाथ जोडके गुरुको प्रणाम करे और दक्षिण वामभागमें गणेशजीको प्रणाम करे और क्षेत्रपाल और जगन्माता देवीको प्रणाम करना उचितहै ॥ २३ ॥

मूलं-ततश्च दक्षाङ्गुष्ठेन निरुद्धय पिंगलां सुधीः॥ इडया पूरयेद्वायुं यथा शक्त्या तु कुम्भयेत्॥ २४॥ ततस्त्यक्त्वा पिंगलया शनैरेव न वेगतः ॥ पुनः पिंगलयाऽऽपूर्य यथाशक्त्या तु कुम्भयेत्॥२५॥इडया रेचयेद्वायुं न वेगेन शनैः शनैः॥इदं योगविधानेन कुर्याद्विंशतिकुम्भकान् ॥ सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः प्रत्यहं विगतालसः॥२६॥

टीका-इसके पश्चात् दाहिने हाथके अंगुष्ठसे पिंगलाको रोककरके इडासे वायु पूरक करे अर्थात् ग्राह्य करे और यथाशक्ति वायुको रोके फिर पिंगलासे शनैः शनैः रेचक अर्थात् वायुको बाहरकरे इसी प्रकार फिर पिंगलासे पूरककरके यथाशक्ति कुम्भककरे फिर इडासे धीरे धीरे रेचक करे वेगसे कदापि नकरे इस योगविधानसे वीस कुम्भककरे और सर्वद्वन्द्वसे रहित होजाय अर्थात् एकाकार वृत्ति रक्खे और नित्य आलस्यको त्याग करके अभ्यासकरे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

मूलं-प्रातः काले च मध्याह्ने सूर्यास्ते चार्द्ध रात्रके कुर्यादेवं चतुर्वारं कालेष्वेतेषु कुम्भकान् ॥ २७॥

टीका-पूर्वोक्त विधिसे प्रातःकाल और मध्याह्नमें और सायंकालमें और अर्द्धरात्रिमें इसीतरह चार वार नित्य कुम्भक करना उचितहै ॥ २७ ॥

मूलं-इत्थं मासत्रयं कुर्यादनालस्यो दिने दिने ॥ ततो नाडीविशुद्धिः स्यादविलम्बेन निश्चितम् ॥ २८॥

टीका-इसीप्रकार आलस्यको छोडकरके तीनमास नित्यकरे तो उसपुरुषकी नाडी बहुत शीघ्र शुद्ध होजाय यह निश्चय है ॥ २८ ॥

मूलं-यदा तु नाडीशुद्धिः स्याद् योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ तदा विध्वस्तदोषश्च भवेदारम्भसम्भवः ॥ २९ ॥

टीका-तत्वदर्शी योगीकी जब नाडी शुद्ध होगी तब सर्व दोषका नाश होगा और आरम्भका सम्भव होगा ॥ २९ ॥

मूलं-चिह्नानि योगिनो देहे दृश्यन्ते नाडिशुद्धितः ॥ कथ्यन्ते तु समस्तान्यङ्गानि संक्षेपतो मया ॥ ३० ॥

टीका-नाडी शुद्ध होनेपर जो योगीके शरीरमें चिन्ह देखपडतेहैं उन सबको हम संक्षेपमें वर्णन करतेहैं ॥ ३० ॥

मूलं-समकायः सुगन्धिश्च सुकान्तिः स्वर साधकः ॥ ३१ ॥ आरम्भघटकश्चैव यथा परिचयस्तदा॥ निष्पत्तिः सर्वयोगेषु यो-गावस्था भवन्ति ताः ॥ ३२ ॥

टीका-जब योगीकी नाडी शुद्धहोगी तब समकाय होजायगा अर्थात् न स्थूल न कृश न वक्र रहेगा और शरीरमें सुगंधी संयुक्त अच्छी कान्ति अर्थात् तेज रहैगा और वायुस्वरका साधन होजायगा और आरम्भका लक्षण जान पडैगा और सब योगका ज्ञान होजायगा इसको योगावस्था कहतेहैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मूलं-आरम्भः कथितोऽस्माभिरधुना वा-युसिद्धये॥ अपरः कथ्यते पश्चात्सर्वदुः खौघनाशनः॥ ३३ ॥

टीका-अभी जो हमने कहाहै सो प्राणवायु सिद्ध होनेके आरम्भमें यह चिन्ह होताहै और इसके पीछे जो सर्व दुःखका नाश होताहै सो कहतेहैं ॥ ३३ ॥

मूलं-प्रौढवह्निः सुभोगी च सुखी सर्वाङ्गसु-

न्दरः ॥ संपूर्णहृदयो योगी सर्वोत्साहब-
लान्वितः ॥ जायते योगिनोऽवश्यमेते
सर्वे कलेवरे ॥ ३४ ॥

टीका—साधकके शरीरमें जठराग्नि विशेष प्रज्वलित होगी और सर्व अङ्ग सुन्दर सुखपूर्वक सुन्दर भोजन करेगा और बलसंयुक्त सर्व उत्साहसे हृदय योगीका प्रसन्न रहैगा इतने गुण योगीके शरीरमें अवश्य होंगे ३४

मूलं—अथ वर्ज्यं प्रवक्ष्यामि योगविघ्नकरं
परम् ॥ येन संसारदुःखाब्धिं तीर्त्वा या
स्यन्ति योगिनः ॥ ३५ ॥

टीका—अब जो योगमें विघ्नहैं उनको हम कहतेहैं जिनको त्यागके यह संसाररूपी जो दुःखका समुद्रहै योगी उसके पार हो जाताहै ॥ ३५ ॥

मूलं—आम्लं रूक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सार्ष-
पं कटुं ॥ बहुलं भ्रमणं प्रातःस्नानं तैलवि
दाहकं ॥ ३६ ॥ स्तेयं हिंसा जनद्वेषश्चाह-
ङ्कारमनार्जवम्॥उपवासमसत्यञ्च मोह-
ञ्च प्राणिपीडनम्॥३७॥ स्त्रीसङ्गमग्निसेवां
च बह्वालापं प्रियाप्रियम्॥ अतीव भोजनं
योगी त्यजेदेतानि निश्चितम् ॥ ३८॥

टीका–खट्टा रूखा तीक्षण लोन सरसों कडुआ बहुत भ्रमण करना प्रातःकाल स्नान शरीरमें तेल मर्दन करना ॥ ३६ ॥ स्वर्ण आदिककी चोरी हिंसा मनुष्यसे द्वेष व अहंकार अनार्जव अर्थात् मनुष्यसे प्रेम न रखना उपहास झूठ ममता प्राणीको पीडादेना॥३७॥ स्त्रीका सङ्ग अग्निसेवन प्रिय अप्रिय बहुत बोलना बहुत भोजन करना योगीको उचितहै कि यह सब अवश्य त्यागदे ॥ ३८ ॥

मूलं–उपायं च प्रवक्ष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ॥ गोपनीयं साधकानां येन सिद्धिर्भवेत् खलु ॥ ३९ ॥

टीका–अब हम बहुतशीघ्र योग सिद्ध होनेका उपाय कहतेहैं इसको गोप्य रखनेसे साधकको योग निश्चय सिद्ध होजायगा ॥ ३९ ॥

मूलं–घृतं क्षीरं च मिष्टान्नं ताम्बूलं चूर्णवर्जितम्॥कर्पूरं निष्ठुरं मिष्टं सुमठं सूक्ष्मवस्त्रकम् ॥४०॥सिद्धान्तश्रवणं नित्यं वैराग्यगृहसेवनम्॥नामसङ्कीर्तनं विष्णोः सुनादश्रवणं परम् ॥४१॥ धृतिः क्षमा तपः शौचं ह्रीर्मतिर्गुरुसेवनम् ॥ सदैतानि परं योगी नियमेन समाचरेत् ॥४२॥

टीका–घृत दूध मधुर पदार्थ ताम्बूल कर्पूर वासित चूर्ण रहित कठोर शब्दरहित मधुर बोलना सुन्दर सूक्ष्मरन्ध्रके स्थानमें रहना सूक्ष्म वस्त्र अर्थात् महीन और थोडा वस्त्र धारण करे नित्य सिद्धांत अर्थात् वेदान्त श्रवण करे और वैराग्यसे ग्रहमें रहे ईश्वरका स्मरणकरे अच्छा शब्द श्रवणकरे धैर्य क्षमा तप शौच लज्जा गुरुकी सेवा योगी सदैव इस प्रकार नेम संयुक्त रहे तो कल्याण होगा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

मूलं–अनिलेऽर्कप्रवेशे च भोक्तव्यं योगिभिः सदा ॥ वायौ प्रविष्टे शशिनि शयनं साधकोत्तमैः ॥ ४३ ॥

टीका–जब सूर्य नाडी अर्थात् पिङ्गला नाडीका प्रवाह रहे तब योगी सदैव भोजनकरके और जब चन्द्र अर्थात् इडा नाडीसे वायुका प्रवाह रहै तब साधकके प्रति शयन करना उचितहै ॥ ४३ ॥

मूलं–सद्यो भुक्तेऽपि क्षुधिते नाभ्यासः क्रियते बुधैः ॥ अभ्यासकाले प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यभोजनम् ॥ ४४ ॥

टीका–भोजन करके तुरंत उसीसमय अथवा जब क्षुधित होय तब साधक कदापि अभ्यास नकरे और अभ्यास कालमें प्रथम दूध घृत भोजन करे ॥ ४४ ॥

मूलं-ततोऽभ्यासे स्थिरीभूते न तादृङ्नियमग्रहः ॥ ४५ ॥ अभ्यासिना विभोक्तव्यं स्तोकंस्तोकमनेकधा ॥ पूर्वोक्तकाले कुर्यात्तु कुम्भकान् प्रतिवासरे ॥ ४६ ॥

टीका-जब अभ्यास स्थिर होजाय तब पूर्वोक्त नियमका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ४५ ॥ और अभ्यासीको उचितहै कि थोडा थोडा कईवार भोजनकरे और जिस प्रकार पहिले कहाहै उसीतरह नित्य कुम्भक करे॥४६॥

मूलं-ततो यथेष्टा शक्तिः स्याद्योगिनो वायुधारणे॥ यथेष्टं धारणाद्वायोः कुम्भकः सिध्यति ध्रुवम् ॥ केवले कुम्भके सिद्धे किं न स्यादिह योगिनः॥ ४७॥

टीका-योगीको वायु धारण करनेकी शक्ति इच्छाके अनुसार हो जायगी जब इच्छानुसार धारणशक्ति होजायगी तब कुंभक निश्चय सिद्ध होगा और केवल कुम्भक सिद्ध होनेसे योगी क्या नहीं करसकता अर्थात् सब सिद्ध करसक्ता है ॥ ४७ ॥

मूलं-स्वेदः संजायते देहे योगिनः प्रथमोद्यमे॥ ४८॥ यदा संजायते स्वेदो मर्दनं

कारयेत्सुधीः ॥ अन्यथा विग्रहे धातुर्नष्टो भवति योगिनः ॥ ४९ ॥

टीका–योगीके शरीरमें प्रथम स्वेद अर्थात् पसीना उत्पन्न होताहै जब स्वेद उत्पन्न होय तो उसको शरीरमें मर्दन करे अन्यथा अर्थात् मर्दन न करनेसे योगीके शरीरका धातु नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मूलं–द्वितीये हि भवेत् कम्पो दार्दुरी मध्यमे मतः ॥ ततोऽधिकतराभ्यासाद्गगनेचरसाधकः ॥ ५० ॥

टीका–दूसरे भूमिकामें कंप होताहै तीसरेमें दार्दुरीवृत्ति होती है अर्थात् आसन उठताहै फिर भूमिपर आय जाता है उससे अधिक अभ्यास होनेसे योगी गगनमें स्वेच्छाचारी होजाताहै ॥ ५० ॥

मूलं–योगी पद्मासनस्थोऽपि भुवमुत्सृज्य वर्तते ॥ वायुसिद्धिस्तदा ज्ञेया संसारध्वान्तनाशिनी ॥ ५१ ॥

टीका–योगी पद्मासनस्थ होके पृथ्वीको त्यागके आकाशमें स्थिर रहे तब जाने कि संसारके अन्धकार नाश करनेवाली वायु सिद्ध होगई ॥ ५१ ॥

मूलं–तावत्कालं प्रकुर्वीत, योगोक्तनियम-

ग्रहम् ॥ अल्पनिद्रा पुरीषं च स्तोकं मूत्रं च जायते ॥ ५२ ॥

टीका—उस कालतक योगके हेतु पूर्वोक्त नियम करना उचित है जबतक वायु न सिद्ध होय और योगीको थोडी निद्रा और थोडा मलमूत्र होताहै ॥५२॥

मूलं—अरोगित्वमदीनत्वं योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ स्वेदो लाला कृमिश्चैव सर्वथैव न जायते ॥ ५३ ॥ कफपित्तानिलाश्चैव साधकस्य कलेवरे ॥ तस्मिन् काले साधकस्य भोज्येष्वनियमग्रहः ॥ ५४ ॥

टीका—तत्त्वदर्शी योगीको कायिक वा मानासिक व्यथा उत्पन्न नहीं होती और स्वेद लाला कृमिआदि उत्पन्न नहीं होता और साधकके शरीरमें कफ पित्त वातका दोषभी नहीं होता पूर्वोक्त कालतक साधक भोजन आदिका नियम करे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

मूलं—अत्यल्पं बहुधा भुक्त्वा योगी न व्यथते हि सः॥अथाभ्यासवशाद्योगी भूचरीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ यथादर्दुरजन्तूनां गतिः स्यात्पाणिताडनात् ॥ ५५ ॥

टीका—योगीको बहुत थोडा या विशेष भोजन क-

रनेसे कष्ट न होगा और योगीको अभ्याससे भूचरी सिद्धि होजायगी जैसे दर्दुरजन्तु पाणि ताडन करके पृथ्वीमें प्रवेश करताहै उसी प्रकार योगीभी हाथ ताडन करके प्रवेश करता है ॥ ५५ ॥

मूलं–सन्त्यत्र बहवो विघ्ना दारुणा दुर्निवारणाः ॥ तथापि साधयेद्योगी प्राणैः कंठगतैरपि ॥ ५६ ॥

टीका–इस योग साधनमें बहुत दारुण विघ्न होते हैं जिसका निवारण बहुत कठिन है परन्तु साधकको उचित है कि यदि कंठगतभी प्राण होजाय तौभी साधन न छोडे ॥ ५६ ॥

मूलं–ततो रहस्युपाविष्टः साधकः संयतेन्द्रियः॥प्रणवं प्रजपेद्दीर्घं विघ्नानां नाशहेतवे ॥ ५७ ॥

टीका–साधकको उचित है कि विघ्नोंके नाशके हेतु इन्द्रियोंके संयममें अर्थात् उनके कार्यको रोकके विधिपूर्वक एकान्तमें बैठके दीर्घमात्रासे अर्थात् स्पष्ट अक्षरके उच्चारणसे प्रणवका जप करे ॥ ५७ ॥

मूलं–पूर्वार्जितानि कर्माणि प्राणायामेन निश्चितम् ॥ नाशयेत्साधको धीमानिहलोकोद्भवानि च ॥ ५८ ॥

टीका-पूर्वार्जित कर्म और जो इस जन्ममें कियाहै यह दोनोंके फलको बुद्धिमान साधक प्राणायामसे निश्चय है कि नाश करदेता है ॥ ५८ ॥

मूलं-पूर्वार्जितानि पापानि पुण्यानि विविधानि च ॥ नाशयेत् षोडशप्राणायामेन योगिपुंगवः ॥ ५९ ॥

टीका-श्रेष्ठयोगी पूर्वार्जित नानाप्रकारका पाप और पुण्यके बल सोलह प्राणायामसे नाश करदेताहै ॥ ५९ ॥

मूलं-पापतूलचयानाहो प्रलयेत्प्रलयाग्निना ॥ ततः पापविनिर्मुक्तः पश्चात्पुण्यानि नाशयेत् ॥ ६० ॥

टीका-साधक पाप राशिको तूलके समान प्राणयामरूपी अग्निसे प्रलय करदेताहै अर्थात् जलादेताहै-इसप्रकारसे मुक्तहोके पश्चात् पुण्यकोभी उसी अग्निमें नाश करदेताहै ॥ ६० ॥

मूलं-प्राणायामेन योगीन्द्रो लब्ध्वैश्वर्याष्टकानि वै ॥ पापपुण्योदधिं तीर्त्वा त्रैलोक्यचरतामियात् ॥ ६१ ॥

टीका-योगी प्राणायामके प्रभावसे आठ ऐश्वर्य

जिसको अष्टसिद्धि कहतेहैं अर्थात् अणिमा, महिमा-गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता और वशिता प्राप्त करताहै अब इन आठों सिद्धिके लक्षण कहते हैं योगीका शरीर इच्छामात्रसे परमाणुवत होजाय उसको अणिमा कहतेहैं और योगी इच्छा पूर्वक प्रकृतिको अपनेमें करके आकाशवत स्थूल होजाय उसको महिमा कहतेहैं और अति हलके शरीरका पर्वतके समान भारी होजाना उसको गरिमा कहतेहैं और बहुत भारी पर्वतके समानको रुईके सदृश होजाना इसको लघिमा कहतेहैं और सर्व पदार्थ इच्छामात्रसे योगीके समीप होजाय उसको प्राप्ती कहतेहैं और दृश्यादृश्य अर्थात् कभी देख पडे कभी न देखपडे इसको प्राकाम्य कहतेहैं और भूत भविष्य पदार्थको जन्म मरणकी रचना करनेमें समर्थ होय उसको ईशता कहतेहैं और भूत भविष्य वर्तमान पदार्थको इच्छासे अपने आधीन करलेना इसको वशित्वसिद्धि कहते हैं और योगी पाप पुण्यके समुद्रको तरके अपने इच्छा पूर्वक त्रैलोक्यमें विचरताहै ॥ ६१ ॥

मूलं-ततोऽभ्यासक्रमेणैव घटिकात्रितयं भवेत् ॥ येन स्यात्सकलासिद्धिर्योगिनः स्वेप्सिता ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

टीका—पूर्वोक्त क्रमसे प्राणायाम जब तीनघडीतक स्थिर होजायगा तब योगीको उसके इच्छाके अनुसार सब सिद्ध होजायगा यह निश्चयहै ॥ ६२ ॥

मूलं—वाक्सिद्धिः कामचारित्वं दूरदृष्टिस्तथैव च ॥ दूरश्रुतिः सूक्ष्मदृष्टिः परकायप्रवेशनं ॥ ६३ ॥ विण्मूत्रलेपने स्वर्णमदृश्यं करणंतथा ॥ भवन्त्येतानि सर्वाणि खेचरत्वं च योगिनाम् ॥ ६४ ॥

टीका—वाक्यसिद्धी स्वेच्छाचारी दूरदृष्टि दूर शब्द श्रवण अतिसूक्ष्म दर्शन दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेकी शक्तिहोय और योगी अन्यधातुमें अपने मल मूत्र लेपन मात्रसे स्वर्णकरे और योगीको अदृश्य होजानेकी शक्ति और आकाशमें गमन करनेकी सिद्धि यह सब योगीको कुम्भक सिद्ध होजानेसे स्वयं सिद्ध होजायगा इसमें संशय नहीं है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

मूलं—यदा भवेद्घटावस्था पवनाभ्यासने परा ॥ तदा संसारचक्रेऽस्मिन् तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥ ६५ ॥

टीका—जब योगीकी घटावस्था होगी अर्थात् उसमें

योगकी घटना होगी तब यह संसार चक्र योगीको कुछ असाध्य न रहैगा ॥ ६५ ॥

मूलं-प्राणापाननादबिंदु जीवात्मपरमात्मनः ॥ मिलित्वा घटते यस्मात्तस्माद्वै घट उच्यते ॥ ६६ ॥

टीका-प्राण अपान नाद बिन्दु जीव आत्मा और परमात्मा इनको एकत्र घटना होनेसे इसको घटावस्था कहतेहैं ॥ ६६ ॥

मूलं-याममात्रं यदा धर्त्तुं समर्थः स्यात्त-दाद्भुतः ॥ प्रत्याहारस्तदैव स्यान्नांतरा भवति ध्रुवम् ॥ ६७ ॥

टीका-एक प्रहर मात्र जब वायु धारण करनेकी सामर्थ होगी तब अद्भुत प्रत्याहारकी शक्तिहोगी अर्थात् फिर और साधनमें अन्तर नहोगा निश्चयहै ॥ ६७ ॥

मूलं-यंयं जानाति योगीन्द्रस्तंतमात्मेति भावयेत् ॥ यैरिन्द्रियैर्यद्विधानस्तदिन्द्रियजयो भवेत् ॥ ६८ ॥

टीका-योगी जो जो पदार्थ जाने सो सो पदार्थमें आत्माकाही भावनाकरे जो इन्द्रियसे जिस पदार्थका बोध होगा उस पदार्थमें वही आतमभावनासे वह इन्द्रिय

जय हो जायगी अर्थात् जैसे नेत्रसे रूपका बोध होताहै तो जब रूपमें आत्मभावना होगी तब उस भावनासे चक्षु इन्द्रिय रूपमें कदापि आसक्त न होगी जब वह आसक्त न भई तब वह इन्द्रिय आपही जय होगई॥६८॥

मूलं–याममात्रं यदा पूर्णं भवेदभ्यासयोगतः ॥ एकवारं प्रकुर्वीत तदा योगी च कुम्भकं ॥६९॥ दण्डाष्टकं यदा वायुर्निश्चलो योगिनो भवेत् ॥ स्वसामर्थ्यात्तदांगुष्ठे तिष्ठेद्वातुलवत् सुधीः ॥ ७० ॥

टीका–जब एकवारमें पूर्ण एकप्रहरतक योगीका अभ्याससे कुम्भक स्थिर रहेगा अर्थात् आठ घडीतक योगीका वायु निश्चल रहे तब वह अपने सामर्थसे अङ्गुष्ठमात्रके बलसे अचल अबोधवत् खडा रहसक्ता है अर्थात् यह सामर्थभी योगीको होगो और अपने सामर्थको गोप्यरखनेके हेतु विक्षिप्तकी चेष्टा योगी देखलावैगा ॥ ६९ ॥ ७० ॥

मूलं–ततः परिचयावस्था योगिनोऽभ्यासतो भवेत् ॥ यदा वायुश्चंद्रसूर्यं त्यक्त्वा तिष्ठति निश्चलम् ॥ ७१ ॥ वायुः परिचितो वायुः सुषुम्णाव्योम्नि संचरेत् ॥

टीका–इस अन्तरमें योगीकी अभ्याससे परिचयावस्था होगी जब वायू इडा पिङ्गलाको त्यागके निश्चल स्थिर रहेगा ॥ ७१ ॥ तब परिचित होके सुषुम्णाके रन्ध्रसे प्राणवायु आकाशको गमन करेगा ॥

मूलं–क्रियाशक्तिं गृहीत्वैव चक्रान् भित्त्वा सुनिश्चितम् ॥ ७२ ॥ यदा परिचयावस्था भवेदभ्यासयोगतः ॥ त्रिकूटं कर्मणां योगी तदा पश्यति निश्चितम् ॥ ७३ ॥

टीका–क्रियाशक्तिको ग्रहण करके योगी निश्चय सब चक्रको वेधेगा।७२॥और जब योग अभ्याससे परिचयावस्था होगी तब त्रिकूट कर्मोंको योगी निश्चय देखेगा तात्पर्य यहहै की जब योगीका पूर्वोक्त अभ्यास सिद्ध होजायगा तब त्रिकूट अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक मानसिक दुःखको आध्यात्मिक कहतेहैं और भूत पिशाचादिसे जो कष्ट होताहै उसको आधिभौतिक कहतेहैं और देवता आदिसे जो कर्मानुसार कष्टहोताहै उसको आधिदैविक कहतेहैं यह त्रिकूट कर्मोंका ज्ञान योगीको होजाताहै ॥ ७३ ॥

मूलं–ततश्च कर्मकूटानि प्रणवेन विनाशयेत्॥स योगी कर्मभोगाय कायव्यूहं समाचरेत् ॥ ७४ ॥

टीका—इस कर्मकूटको योगी प्रणव द्वारा नाश कर-देताहै और यदी पूर्वकृत कर्मफल भोगनेकी इच्छा करे तो अपने इच्छानुसार इसी जन्ममें इसी शरीरसे भोगलेगा ॥ ७४ ॥

मूलं—अस्मिन्काले महायोगी पंचधा धारणं चरेत् ॥ येनभूरादिसिद्धिः स्यात्ततो भूत-भयापहा ॥ ७५ ॥ आधारे घटिकाः पंच-लिंगस्थाने तथैव च ॥ तदूर्ध्वं घटिकाः पञ्च नाभिहृन्मध्यके तथा ॥ ७६ ॥ भ्रूम-ध्योर्ध्वं तथा पंच घटिका धारयेत् सुधीः॥ तथा भूरादिना नष्टो योगीन्द्रो न भवेत् खलु ॥ ७७ ॥

टीका—जिसकालमें महायोगी पञ्चधाधारणा सिद्ध करलेगा तब यह पञ्चभूत सिद्ध होजायगें और इनस कोई कष्टका भय नहोगा अब धारणका निर्णय करतेहैं कि आधारचक्रमें पांचघडी वायू धारणकरे इसी क्रमसे स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञाचक्रमें अर्थात् गुदा लिङ्ग नाभि हृदय कंठ भृकुटीके मध्यमें ऊपर कहेहुए प्रमाणसे वायू धारणकरेगा तो योगी पञ्च भूतसे निश्चय नाश न होगा ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

मूलं-मेधावी सर्वभूतानां धारणां यः समभ्यसेत् ॥ शतब्रह्ममृतेनापि मृत्युस्तस्य न विद्यते ॥ ७८ ॥

टीका-बुद्धिमान योगी अभ्याससे पञ्चभूतकी धारणा करेगा तो यदि एकशत ब्रह्माभी मृत्युको प्राप्त होंगे तबभी उसकी मृत्यु न होगी ॥ ७८ ॥

मूलं-ततोऽभ्यासक्रमेणैव निष्पत्तिर्योगिनो भवेत् ॥ अनादिकर्मबीजानि येन तीर्त्वाऽमृतं पिबेत् ॥ ७९ ॥

टीका-इस अभ्यास क्रमसें योगीको ज्ञान होताहै और अनादिकर्म बीजको तरके अर्थात् नाश करके योगी अमृत पान करताहै ॥ ७९ ॥

मूलं-यदा निष्पत्तिर्भवति समाधेः स्वेन कर्मणा ॥ जीवन्मुक्तस्य शांतस्य भवेद्धीरस्य योगिनः ॥ ८० ॥ यदा निष्पत्तिसंपन्नः समाधिः स्वेच्छया भवेत् ॥ ८१ ॥ गृहीत्वा चेतनां वायुः क्रियाशक्तिं च वेगवान् ॥ सर्वान् चक्रान् विजित्वा च ज्ञानशक्तौ विलीयते ॥ ८२ ॥

टीका—जब अपने अभ्यासकर्मसे योगीको समाधी का ज्ञान होगा तब जीवन्मुक्त शान्त होके योगीको ज्ञानसम्पन्न स्वेच्छासमाधी होगी और मन वायु क्रिया शक्ति सहित सर्व चक्रको वेधके ज्ञानशक्तीमें लीन हो जायगा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

मूलं—इदानीं क्लेशहान्यर्थं वक्तव्यं वायुसा-
धनम् ॥ येन संसारचक्रेऽस्मिन् रोगहानि-
र्भवेद्ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

टीका—हे देवी अब क्लेश हानीके अर्थ वायुसाधन कहते हैं जिससे इस संसार चक्रमें निश्चय रोगादिक नाश होजाय और साधकको कष्ट न हो ॥ ८३ ॥

मूलं—रसनां तालुमूले यः स्थापयित्वा वि-
चक्षणः॥पिबेत् प्राणानिलं तस्य रोगाणां
संक्षयो भवेत् ॥ ८४ ॥

टीका—जिह्वाको तालूके मूलमें स्थितकरके बुद्धिमान साधक यदि प्राणवायुको पान करे तो उसके सर्व रोगोंका नाश हो जायगा ॥ ८४ ॥

मूलं—काकचंच्वा पिबेद्वायुं शीतलं यो वि-
चक्षणः ॥ प्राणापानविधानज्ञः स भवेन्मु-
क्तिभाजनः ॥ ८५ ॥

टीका–जो बुद्धिमान साधक प्राण अपानके विधानका ज्ञाता काकचञ्च्वा अर्थात् अधरको काकके चोचके समान लम्बा करके सीतल वायुपान करता है सो योगी मुक्ति भाजनहै अर्थात् मुक्तिपात्रहै ॥ ८५ ॥

मूलं–सरसं यः पिबेद्वायुं प्रत्यहं विधिना सुधीः ॥ नश्यंति योगिनस्तस्य श्रमदाहजरामयाः ॥ ८६ ॥

टीका–जो साधक नित्य विधान पूर्वक रससहित वायुपान करता है उसका सर्व रोग और श्रम दाह जरा अर्थात् वृद्धावस्था नाश होजाताहै अर्थात् यह सब उसके समीप नहीं आता ॥ ८६ ॥

मूलं–रसनामूर्ध्वगां कृत्वा यश्चन्द्रे सलिलं पिबेत् ॥ मासमात्रेण योगीन्द्रो मृत्युं जयति निश्चितम् ॥ ८७ ॥

टीका–जो योगी जिह्वाको ऊपर करके चंद्रमासे विगत सुधारसको पान करताहै सो योगी एक मासमें निश्चय मृत्युको जीत लेता है इस जगह जिह्वा ऊपर करनेसें तात्पर्य खेचरी मुद्रासे है सो खेचरी मुद्रा गुरु मुखसे जानना उचितहै ॥ ८७ ॥

मूलं–राजदंतबिलं गाढं संपीड्य विधिना

पिबेत् ॥ ध्यात्वा कुण्डलिनीं देवीं षण्मासेन कविर्भवेत् ॥ ८८ ॥

टीका–जो साधक राजदन्तको नीचेके दांतसे दबायके उसके रन्ध्रद्वारा विधिसे वायुपान करे और उस कालमें कुंडलनी देवीका ध्यान करेगा तो निश्चय छः मासमें कवि होगा ॥ ८८ ॥

मूलं–काकचंच्वा पिबेद्वायुं सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥ कुण्डलिन्या मुखे ध्यात्वा क्षयरोगस्य शान्तये ॥ ८९ ॥

टीका–पूर्वोक्त काकचञ्च्वा विधिसे दोनों सन्ध्यामें जो कुण्डलनीकी मुखका ध्यान करके वायुपान करेगा उसका क्षयरोग नाश होजायगा ॥ ८९ ॥

मूलं–अहर्निशं पिबेद्योगी काकचंच्वा विचक्षणः ॥ पिबेत्प्राणानिलं तस्य रोगाणां संक्षयो भवेत् ॥ दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिस्तथा स्याद्दर्शनं खलु ॥ ९० ॥

टीका–जो योगी बुद्धिमान रात्रि दिवस काकचञ्च्वासे प्राणवायु पान करतेहैं उनके रोगोंका नाश हो जाताहै और दूरका शब्द श्रवण होताहै और दूरकी वस्तु देख पडतीहै तथा निश्चय सूक्ष्म दरशन होताहै९०

मूलं-दन्ते दन्तान् समापीड्य पिबेद्वायुं शनैः शनैः ॥ ऊर्ध्वजिह्वः सुमेधावी मृत्युं जयति सोचिरात् ॥ ९१ ॥

टीका-जो बुद्धिमान दांतसे दांतको पीडित करके धीरे धीरे वायुपान करेगा और जिह्वा ऊपर करके अमृतपान करेगा सो शीघ्र मृत्युको जीतलेगा ॥ ९१ ॥

मूलं-षण्मासमात्रमभ्यासं यः करोति दिनेदिने ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रोगान्नाशयते हि सः ॥ ९२ ॥ सँव्वत्सरकृताभ्यासान्मृत्युं जयति निश्चितम् ॥ तस्मादतिप्रयत्नेन साधयेद्योगसाधकः ॥ ९३ ॥ वर्षत्रयकृताऽभ्यासाद्भैरवो भवति ध्रुवम् ॥ अणिमादिगुणान् लब्ध्वा जितभूतगणः स्वयम् ॥ ९४ ॥

टीका-जो पहिले कहे हुए अभ्यासको नित्य छः मास करे तो सब रोगोंका नाश होजायगा और सब पापसे मुक्त होजाय और उसी अभ्यासको एकवर्षकरे तो मृत्युको निश्चय जीतले इस हेतुसे साधक इस क्रियाका यत्न करके अवश्य साधनकरे और यदि इसका अभ्यास तीनवर्षकरे तो निश्चय भैरव होजाय और

अष्टसिद्धिका लाभहोय और सर्व भूतगण आपही वश में होजाय ॥ ९२ ॥९३ ॥९४ ॥

मूलं-रसनामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणार्धं यदि तिष्ठति ॥ क्षणेन मुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरादिभिः ॥ ९५ ॥

टीका-योगीका जिह्वा यदि क्षणमात्र ऊपर स्थिर होजाय तो उसी क्षणसे सर्वव्याधि और वृद्धावस्था और मृत्यूका नाश होजाय तात्पर्य यह है कि खेचरीमुद्रासे किञ्चित्मात्रभी अमृतपान करलेगा तो उसकी मृत्यु न होगी ॥ ९५ ॥

मूलं-रसनां प्राणसंयुक्तां पीडचमानां विचिंतयेत् ॥ न तस्य जायते मृत्युः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥९६॥

टीका-जिह्वाको प्राणसहित पीडित करके जो पुरुष ब्रह्मरन्ध्रमें ध्यान संयुक्त स्थिर करेगा हेदेवी हम वार म्वार कहतेहैं कि निश्चय उसकी मृत्यू नहोगी ॥९६॥

मूलं-एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ॥ न क्षुधा न तृषा निद्रा नैव मूर्छा प्रजायते ॥ ९७ ॥

टीका-इस योग अभ्याससे जो पहिले कहाहै वह

पुरुष दूसरा कामदेव होजायगा अर्थात् कामदेवके समान शोभितहोगा और उसको क्षुधा तृषा निद्रा मूर्छा कभी न उत्पन्नहोगी ॥ ९७ ॥

मूलं–अनेनैव विधानेन योगीन्द्रोऽवनिमण्डले ॥ भवेत्स्वच्छन्दचारी च सर्वापत् परिवर्जितः ॥ ९८ ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्मोदते ससुरैरपि ॥ पुण्यपापैर्न लिप्येत एतदाचरणेन सः ॥ ९९ ॥

टीका–इस विधानसे योगी संसारमें सर्वदुःखसे रहित होके स्वेच्छाचारी होजायगा और इस आचरणसे योगी पुण्यपापमें लिप्त नहींहोगा नफिर संसारमें उसका जन्महोगा औरदेवतोंके साथ आनन्द पूर्वक विचरेगा ॥९८॥ ९९॥

मूलं–चतुरशीत्यासनानि सन्ति नानाविधानि च ॥ १०० ॥ तेभ्यश्चतुष्कमादाय मयोक्तानि ब्रवीम्यहं ॥ सिद्धासनं ततः पद्मासनञ्चोग्रं च स्वस्तिकम् ॥ १०१ ॥

टीका–बहुत प्रकारके चौरचासी आसनहैं उनमें उत्तम जो चार आसनहैं उनको हम कहतेहैं सिद्धासन पद्मासन उग्रासन स्वस्तिकासन तात्पर्य यहहै कि और

आसन करनेसे नाडी शुद्धहोतीहै परन्तु यह चार आ-सनसे वायुधारण करके बैठनेमें कष्ट नहीं होता और प्रधान नाडी शीघ्र वश होजातीहै ॥ १००॥१०१ ॥

मूलं—योनिं संपीडच्य यत्नेन पादमूलेन साधकः ॥ मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेत् योगवित् सदा ॥ १०२ ॥ ऊर्ध्वं निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चलः संयतेन्द्रियः ॥ विशेषोऽवक्रकायश्च रहस्युद्वेगवर्जितः ॥ एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम् ॥१०३॥

टीका—योगवेत्ता साधक पादमूल अर्थात् एडीसे योनिस्थानको पीडित करे और दूसरे पादके एडी को मेढ्र अर्थात् लिंगके मूल स्थानपर रक्खे और ऊपर भ्रूके मध्यमें निश्चल दृष्टिरक्खे जितेन्द्रीपुरुष विशेष सीधा शरीर करके विधानपूर्वक वेगवर्जित सावधान होके बैठे इसको सिद्धासन कहते हैं यह आसन सिद्धों को सिद्धि देनेवालाहै ॥ १०२॥१०३॥

मूलं—येनाभ्यासवशात् शीघ्रं योगनिष्पत्तिमाप्नुयात् ॥ १०४ ॥ सिद्धासनं सदा सेव्यं पवनाभ्यासिना परम् ॥

टीका—इस अभ्याससे जो पहिले कहाहै शीघ्र योग-

का ज्ञान होताहै इस हेतुसे यह सिद्धासन पवनाभ्यासीको सदा सेवनेके योग्यहै ॥ १०४ ॥

मूलं–येन संसारमुत्सृज्य लभते परमां गतिम् ॥ १०५॥ नातः परतरं गुह्यमासनं विद्यते भुवि ॥ येनाऽनुध्यानमात्रेण योगी पापाद्विमुच्यते ॥ १०६ ॥

टीका–इस सिद्धासनके प्रभावसे साधक संसारको छोडके परमगतिको पाताहै और इससे उत्तम वा गोप्य संसारमें दूसरा आसन नहींहै जिसके ध्यानमात्रसे योगी सर्व पापसे मुक्त होजाताहै ॥ १०५॥१०६ ॥

मूलं–उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः॥ उरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा तु तादृशौ ॥ १०७॥ नासाग्रे विन्यसेद्दृष्टिं दन्तमूलञ्च जिह्वया॥ उत्तोल्य चिबुकं वक्ष उत्थाप्य पवनं शनैः॥ १०८॥ यथाशक्त्या समाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः ॥ यथा शक्त्यैव पश्चात्तु रेचयेदविरोधतः ॥ १०९ ॥ इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते परम् ॥ ११० ॥

टीका-दोनो चरण को उत्तान करके यत्नसे ऊरू अर्थात् जंघापर रक्खे उसीप्रकार दोनों हाथको सीधा करके ऊरूके मध्यमें रक्खे और नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि और दांतके मूलमें जिह्वा स्थितकरे और वक्ष अर्थात् हृदयस्थान चिबुक अर्थात् ठोडी स्थापनकरे और अपानवायुको उठाके प्राणको शनैशनै यथाशक्ति पूरक करके धारणाकरें पश्चात् धीरे धीरे रेचक अर्थात् वायूको त्यागदे इसको पद्मासन कहतेहैं यह सर्व व्याधिका नाशकहै यह आसन बहुत दुर्लभहै परंतु कोई बुद्धिमान् साधकको प्राप्त होताहै ॥१०७॥१०८॥१०९॥११०॥

मूलं-अनुष्ठाने कृते प्राणः समश्चलति तत्क्षणात् ॥ भवेदभ्यासने सम्यक् साधकस्य न संशयः॥ १११ ॥

टीका-पूर्वोक्त अनुष्ठान करनेसे उसी समय प्राण सम होके सुषुम्णामें प्रवेश करेगा अभ्याससे साधकका वायु सम होजायगा इसमें संशय नहीं ॥ १११ ॥

मूलं-पद्मासने स्थितो योगी प्राणापान विधानतः॥ पूरयेत् स विमुक्तः स्यात्सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ११२ ॥

टीका-ईश्वर श्रीपार्वतीजीसे कहतेहैं की पद्मासन

स्थितयोगी प्राण अपानके विधानसे वायु पूरण करेगा सो संसारबन्धसे मुक्तहोजायगा इसमें संशयनहीं है हम सत्यकहते हैं ॥ ११२ ॥

मूलं–प्रसार्य चरणद्वन्द्वं परस्परमसंयुतं॥ स्वपाणिभ्यां दृढं धृत्वा जानूपरि शिरो न्यसेत् ॥ ११३ ॥ आसनोग्रमिदं प्रोक्तं भवेदनिल दीपनम्॥ देहावसानहरणं पश्चिमोत्तानसंज्ञकम्॥ ११४॥यएतदासनं श्रेष्ठं प्रत्यहं साधयेत्सुधीः ॥ वायुः पश्चिममार्गेण तस्य सञ्चरति ध्रुवम् ॥११५॥

टीका–दोनो चरणको संग परस्पर लम्बाकरकें दोनोहाथसे बलसे धरे और जानूपर शिरको स्थितकरे इसको उग्रासन कहतेहै और पश्चिमतानभी संज्ञाहै इससें वायुदीपन होताहै और मृत्यूका नाशकरताहै और यहसब आसनमें श्रेष्ठहै बुद्धिमान इसको नित्य साधन करे तो उसका वायु पश्चिममार्गसे अवश्य सञ्चार करेगा ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

मूलं–एतदभ्यासशीलानां सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ तस्माद्योगी प्रयत्नेन साधयेत् सिद्धमात्मनः ॥ ११६ ॥

टीका—ऐसे पूर्वोक्त अभ्यासमें जो लोग तत्परहैं उन को सर्वसिद्धि उत्पन्नहोतीहै इस हेतुसे यत्न करकेयोगी आत्माके सिद्धहोनेकी साधना करे ॥ ११६ ॥

मूलं—गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्य चित् ॥ येन शीघ्रं मरुत्सिद्धिर्भवेद्दुःखौघनाशिनी ॥ ११७ ॥

टीका—यह आसन जो पहिले कहाहै यत्नसे गोपनीयहै सबको देना उचित नहींहै परंतु अधिकारीको देना योग्यहै इससे बहुत शीघ्रवायु सिद्ध होजाताहै और यह सिद्धि दुःखके समूहको नाश करदेने वालीहै ॥ ११७ ॥

मूलं—जानूर्वोरन्तरे सम्यक् धृत्वा पादतले उभे ॥ समकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ११८ ॥ अनेन विधिना योगी मारुतं साधयेत् सुधीः ॥ देहेन क्रमते व्याधिस्तस्य वायुश्च सिध्यति ॥ ११९ ॥ सुखासनमिदं प्रोक्तं सर्वदुःखप्रणाशनं ॥ स्वस्तिकं योगिभिर्गोप्यं स्वस्तीकरणमुत्तमम् ॥ १२० ॥

टीका—जानु और ऊरुके मध्यमें बराबर पादके

ऊपर नीचे धरे और समकाय अर्थात् बराबर शरीर करके सुखपूर्वक बैठे उसको स्वस्तिकासन कहतेहैं इस विधानसे बुद्धिमान योगी वायुका साधनकरे तो उसके शरीरमें व्याधी प्रवेश नहीं करती और उसको वायु सिद्धहोजातीहै इसको सुखासन कहतेहै यह सर्वदुःखका नाशकहै यह स्वस्तिकासन योगी लोगोंको गोप्य रखना उचितहै इसकारणसेकी उत्तम कल्याणका कारकहै ॥ १२० ॥

इति श्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगाभ्यासतत्त्वकथनं नाम तृतीयः पटलः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थपटलः ।

मूलं—आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे पूरयेन्मनः ॥ गुदमेढ्रान्तरे योनिस्तामाकुंच्य प्रवर्तते ॥ १ ॥

टीका—पहिले पूरक योग विधानसे आधारपद्ममें वायुको मन सहित पूरक करके स्थितकरे और गुदामेढ़के मध्यमें जो योनि स्थानहै उसको यत्नसे आकुञ्चन करनेमें प्रवृत्तहोय ॥ १ ॥

मूलं—ब्रह्मयोनिगतं ध्यात्वा कामं कन्दुकसन्निभम् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटि-

सुशीतलं ॥ २ ॥ तस्योर्ध्वे तु शिखासूक्ष्मा चिद्रूपा परमाकला ॥ तया सहितमात्मा नमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥ ३ ॥

टीका—ब्रह्मयोनिके मध्यमें कामपुष्प अर्थात् कामबाणके समान कोटिसूर्यके सदृश प्रकाश और कोटि चन्द्रमाके समान शीतल कामदेवका ध्यान करे और उसके ऊर्ध्व भागमें सूक्ष्म ज्योति शिखा चैतन्यस्वरूपा परमाशक्ति सहित एक परमात्माका चिन्तन करै ॥ २ ॥ ३ ॥

मूलं—गच्छति ब्रह्ममार्गेण लिंगत्रयक्रमेण वै ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥४॥ अमृतं तद्धि स्वर्गस्थं परमानन्दलक्षणम् ॥ श्वेतरक्तं तेजसाढ्यं सुधाधाराप्रवर्षिणम् ॥ ५ ॥ पीत्वा कुलामृतं दिव्यं पुनरेव विशेत्कुलम् ॥

टीका—उसी ब्रह्मयोनिसे जीव सुषुम्णा रन्ध्रद्वारा क्रमसे तीन लिङ्ग अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कारणस्वरूपसे प्रस्थान करताहै और स्वर्गस्थ अमृत परम आनन्द का लक्षण स्वेत रक्त वर्ण कोटि सूर्यके सदृश तेज प्रकाश और कोटि चन्द्रमाके समान शीतल सुधाधारा

वर्षीं दिव्यकुलामृतको पान करके फिर योनिमण्डल में स्थित होजाताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूलं-पुनरेव कुलं गच्छेन्मात्रायोगेन नान्यथा ॥ ६ ॥ सा च प्राणसमाख्याता ह्यस्मिंस्तन्त्रे मयोदिता ॥

टीका-फिर ब्रह्मयोनिसे प्राणायामयोग करके प्राण जाताहै इस तंत्रमें जो हमने कहाहै हे देवी उस ब्रह्म योनिको प्राणके समान कहते हैं ॥ ६ ॥

मूलं-पुनः प्रलीयते तस्यां कालाग्न्यादिशिवात्मकं॥ ७ ॥योनिमुद्रा परात्येषा बन्धस्तस्याः प्रकीर्तितः ॥ तस्यास्तु बन्धमात्रेण तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥ ८ ॥

टीका-फिर तीसरे बार काल अग्नि आदि शिवात्मक जीव प्रस्थान पूर्वक चन्द्रमण्डलमें दिव्य अमृत पान करके फिर ब्रह्मयोनिमें लय होजाताहै हे देवी इस बन्धको योनि मुद्रा कहते हैं केवल बन्धमात्रसे संसारमें असाध्य कोई वस्तु नहीं है अर्थात् सब सिद्ध हो सक्ताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

मूलं-छिन्नरूपास्तु ये मन्त्राः कीलिताः स्तंभिताश्च ये ॥ दग्धा मन्त्राः शिरोहीना

मलिनास्तु तिरस्कृताः ॥ ९ ॥ मन्दा बालास्तथा वृद्धाः प्रौढा यौवनगर्विताः ॥ भेदिनो भ्रमसंयुक्ताः सप्ताहं मूर्छिताश्च ये ॥ १० ॥ अरिपक्षे स्थिता ये च निर्वीर्याः सत्त्ववर्जिताः ॥ तथासत्त्वेन हीनाश्च खण्डिताः शतधाकृताः ॥ ११ ॥ विविधानेन संयुक्ता प्रभवन्त्यचिरेण तु ॥ सिद्धिमोक्षप्रदाः सर्वे गुरुणा विनियोजिताः ॥ १२ ॥ यद्यदुच्चरते योगी मंत्ररूपं शुभाशुभं ॥ तत्सिद्धिं समवाप्नोति योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १३ ॥ दीक्षयित्वा विधानेन अभिषिच्य सहस्रधा ॥ ततो मंत्राधिकारार्थमेषा मुद्रा प्रकीर्तिता ॥ १४ ॥

टीका–जो मन्त्र छिन्नरूपहैं और कीलितहैं स्तम्भितहैं और जो मन्त्र दग्धहैं शिर हीनहैं मलीनहैं और जिनका अनादरहै और मन्दहैं बालहैं वृद्धहैं प्रौढहैं और जो यौवनगर्वितहैं और भेदितहैं भ्रमसंयुक्त हैं सप्ताहसे मूर्छितहैं और जो शत्रुके पक्षमें हैं निर्वीर्य है

सत्व रहितहैं खण्डितहैं सौखण्ड होगएहैं इस विधिसे युक्त होके साधन करनेसे शीघ्र प्रकर्ष करके सिद्ध होजायगा गुरु शिक्षासे सब सिद्ध और मोक्षप्रद होजाताहै योगीसे जो मन्त्र शुभ वा अशुभरूप उच्चारण होताहै सो सब योनिमुद्राके बन्धनमात्रसे सिद्ध होजाताहै विधानपूर्वक मंत्रके अधिकारार्थ गुरुको उचितहैकि इस योनिमुद्राके दीक्षाका अभिषेक सहस्रधा शिष्यको करे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलं–ब्रह्महत्यासहस्राणि त्रैलोक्यमपि घातयेत् ॥ नासौ लिप्यति पापेन योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १५ ॥

टीका–यदि एक सहस्र ब्रह्महत्याकरके और त्रैलोक्य काभी घात करदे अर्थात् प्राणीमात्रका नाश करदे तोभी वह इस योनिमुद्राके बन्धमात्रसे पापमें लिप्त न होगा अर्थात् उसको पाप नलगेगा ॥ १५ ॥

मूलं–गुरुहा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ एतैः पापैर्न बध्येत योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १६ ॥

टीका–गुरुघातक मद्यपाई चोर गुरुकी शय्यामें रमण करनेवाला ऐसे अनेक पातकसेभी साधक योनिमुद्राके बन्ध प्रभावसे बन्धायमान नहोगा ॥ १६ ॥

मूलं—तस्मादभ्यसनं नित्यं कर्तव्यं मोक्ष
कांक्षिभिः ॥ अभ्यासाज्जायते सिद्धिर-
भ्यासान्मोक्षमाप्नुयात् ॥ १७॥

टीका—इसहेतुसे मोक्षकांक्षीको उचितहै कि नित्य अभ्यासकरे अभ्याससे सिद्धि होतीहैं और अभ्यासही से मुक्ति प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

मूलं—संविदंलभतेऽभ्यासाद्योगोभ्यासात्प्र-
वर्तते ॥मुद्राणां सिद्धिरभ्यासादभ्यासा-
द्वायुसाधनं ॥१८॥ कालवञ्चनमभ्यासा-
त्तथा मृत्युञ्जयो भवेत्॥वाक्सिद्धिः का-
मचारित्वं भवेदभ्यासयोगतः ॥ १९ ॥

टीका—अभ्याससे ज्ञान प्राप्त होताहैं और अभ्यास-से योगमें प्रवृत्ति होतीहै और अभ्याससे मुद्रा सिद्ध होतीहैं और अभ्याससे वायुका साधन होताहै और अभ्याससे मनुष्य कालसे बचताहै और अभ्यासहीसे मृत्यूजय होजाताहै और अभ्यासयोगसे वाक्य सिद्धि और मनुष्य इच्छाचारी होजाताहै तात्पर्य यहहै कि सब वस्तुके सिद्धिका कारण अभ्यासहै इसहेतुसे आ-लस्यको छोडके जिस वस्तुमें मनुष्य अभ्यासकरेगा वह अवश्य सिद्ध होजायगा ॥ १८ ॥ १९ ॥

मूलं-योनिमुद्रा परं गोप्या न देया यस्य कस्यचित् ॥ सर्वथा नैव दातव्या प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ २० ॥

टीका-यह योनिमुद्रा परम गोपनीयहैं अन धिकारीको कदापि नदे यह सर्वथा देनेके योग्यनहीं है यदि कण्ठगत प्राण होजायँ तौ भीं देना उचित नहींहै ॥२०॥

मूलं-अधुना कथयिष्यामि योगसिद्धिकरं परम्॥गोपनीयं सुसिद्धानां योगं परमदुर्लभम् ॥ २१ ॥

टीका-हेदेवी अब जो योग कहैंगे वह परमसिद्धिका देनेवालाहै सिद्ध लोगोंको गोप्य रखना इस परम दुर्लभ योगका उचितहै ॥ २१ ॥

मूलं-सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली॥ तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोपि च ॥ २२ ॥

टीका-गुरूके प्रसादसे निद्रिता कुण्डलनी देवी जब जागृत होती है तब सर्व पद्म और सर्व ग्रंथी वेधित हो जाती हैं अर्थात् सुषुम्णा रन्ध्रद्वारा प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्र पर्यंत सञ्चार करने लगजाताहै ॥ २२ ॥

मूलं-तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्व-

रीं ॥ ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत् ॥ २३ ॥

टीका–इस कारणसे यत्नपूर्वक ब्रह्मरन्ध्रके मुखमें जो ईश्वरी कुण्डलनी देवी शयन करती हैं उनको उठानेके अर्थ मुद्राका अभ्यास करना उचितहै ॥ २३ ॥

मूलं–महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी ॥ जालंधरो मूलबंधो विपरीतकृतिस्तथा ॥ २४ ॥ उड्डानं चैव वज्रोली दशमे शक्तिचालनम् ॥ इदं हि मुद्रादशकं मुद्राणामुत्तमोत्तमम् ॥ २५ ॥

टीका–अब उत्तम मुद्राबन्ध वेध कहते हैं महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरीमुद्रा, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध, विपरीतकरणीमुद्रा, उड्डानबन्ध, वज्रोलीमुद्रा और दशवीं शक्तिचालनमुद्रा, यह दशों मुद्रा सबमें अतिउत्तमहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ महामुद्राकथनम् ।

मूलं–महामुद्रां प्रवक्ष्यामि तन्त्रेऽस्मिन्मम वल्लभे ॥ यां प्राप्य सिद्धाः सिद्धिं च कपिलाद्याः पुरागताः ॥ २६ ॥

टीका–हे प्रिये पार्वती इस तन्त्रमें महामुद्रा जो हम कहतेहैं इसको लाभ करके पूर्व कपिल आदिकें सिद्ध-वरको सिद्धि प्राप्त भई ॥ २६ ॥

मूलं–अपसव्येन संपीडय पादमूलेन सा-दरम् ॥ गुरूपदेशतो योनिं गुदमेढ्रान्तरा-लगाम् ॥२७॥ सव्यं प्रसारितं पादं धृत्वा पाणियुगेन वै ॥ नवद्वाराणि संयम्य चि-बुकं हृदयोपरि ॥ २८ ॥ चित्तं चित्तपथे दत्त्वा प्रभवेद्वायुसाधनम्॥ महामुद्रा भ-वेदेषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥२९॥ वामाङ्गे-न समभ्यस्य दक्षाङ्गेनाभ्यसेत्पुनः ॥ प्रा-णायामं समं कृत्वा योगी नियतमा-नसः ॥ ३० ॥

टीका–वामपादके एडीसे गुदा और मेढ्रके मध्यमें जो योनिहै उसको आदर सहित गुरूके उपदेशपूर्वक पीडितकरे अर्थात् दबावे और दक्षिणपाद प्रसारके अ-र्थात् लम्बा करके दोनोंहाथसे धरे और नवद्वारोंको रोक करके चिबुक अर्थात् ठोढीको हृदयपर स्थितकरे और चित्तवृत्तिको चैतन्यमें स्थिर करके वायूका साधन कर ना उचितहै यह महामुद्रा सर्व तन्त्रोंके प्रमाणसे गो-

प्यहै पहिले वामांगसे अभ्यास करके फिर दक्षिण अं-
गसे अभ्यासकरे योगी स्थिर बुद्धिको उचित है कि इस
प्रकारसे प्राणायामको समकरे॥ २७॥२८॥२९॥३०॥

मूलं–अनेन विधिना योगी मन्दभाग्योऽ-
पि सिध्यति॥सर्वासामेव नाडीनां चालनं
बिन्दुमारणम्॥३१॥जीवनन्तु कषायस्य
पातकानां विनाशनं॥कुण्डलीतापनं वायो
ब्रह्मरन्ध्रप्रवेशनम्॥३२॥सर्वरोगोपशमनं
जठराग्निविवर्धनं॥ वपुषा कान्तिममलां
जरामृत्युविनाशनम्॥ ३३॥ वांछितार्थ-
फलं सौख्यमिन्द्रियाणाञ्च मारणम्॥
एतदुक्तानि सर्वाणि योगारूढस्य योगि
नः॥ ३४॥ भवेदभ्यासतोऽवश्यं नात्र
कार्या विचारणा॥

टीका–इस विधानसे मन्दभाग्य योगीभी सिद्ध होजा-
यगा और इस महामुद्राके प्रभावसे सर्व नाडीका च-
लन सिद्ध होजायगा और बिन्दु स्थिर होगा और जी-
वनको आकर्षित रक्खेगा और सर्व पातकका नाश हो-
जायगा और कुण्डलनीको हठात उठाय वायूको ब्रह्मर-
न्ध्रमें प्रवेशकरेगा और जठराग्नि प्रज्वलित होके सर्वरो-

गोंका नाश करदेगा और शरीरमें सुन्दर कान्तिहोगी और वृद्धावस्थासहित मृत्युका नाश होजायगा और सुखसहित वाञ्छित फल लाभ होगा और इन्द्रियोंका निग्रह रहेंगा यह सब जो कहाहै सो योगारूढ योगीको अभ्याससे वश होजाताहै इसमें संशय नहीहै निश्चयहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मूलं–गोपनीया प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजिते ॥ यांतु प्राप्य भवाम्भोधेः पारं गच्छन्ति योगिनः ॥ ३५ ॥

टीका–हेसुरपूजिते देवी यह मुद्रा यत्न करके गोपनीयहै योगीलोग इसको लाभ करके संसाररूपी समुद्रके पार होजातेहैं ॥ ३५ ॥

मूलं–मुद्रा कामदुघा ह्येषा साधकानां मयोदिता ॥ गुप्ताचारेण कर्तव्या न देया यस्य कस्यचित् ॥ ३६ ॥

टीका–हेदेवी यह मुद्रा जो हमने कहीहै साधकोंको कामधेनुरूपहै अर्थात् वाञ्छित फलकी दाताहै इसको गुप्त करके अभ्यास करना उचितहै और सबको अर्थात् अनाधिकारीको देना उचित नहींहै ॥ ३६ ॥

अथ महाबन्धकथनम् ॥

मूलं–ततः प्रसारितः पादो विन्यस्य तमुरू

परि ॥ ३७ ॥ गुदयोनिं समाकुंच्य कृत्वा चापानमूर्ध्वगं ॥ योजयित्वा समानेन कृत्वा प्राणमधोमुखम् ॥ ३८॥ बन्धयेदूर्ध्वगत्यर्थं प्राणापानेन यः सुधीः ॥ कथितोऽयं महाबन्धः सिद्धिमार्गप्रदायकः ॥ ॥ ३९ ॥ नाडीजालाद्रसव्यूहो मूर्धानं याति योगिनः ॥ उभाभ्यां साधयेत्पद्भ्यामेकैकं सुप्रयत्नतः ॥ ४० ॥

टीका—तदनन्तर पादको प्रसारके अर्थात् फैलाके दक्षिण चरणको वाम ऊरूपर स्थित करके और गुदा और योनिको आकुञ्चन करके अपानको ऊर्ध्व करके समानवायुके साथ सम्बन्ध करके और प्राणवायुको अधोमुखकरे यह बन्ध प्राण अपानके ऊर्ध्वगतीके हेतु बुद्धिमान् साधकके प्रति कहाहै और यह महाबन्ध सिद्धिमार्गका दाताहै और योगी लोगोंके नाडियोंका रस समूह इस बन्धसे ऊपरको गमन करताहै यह दोनों मुद्रा और बन्ध एक एकको दोनों अंगसे यत्न करके करना उचितहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

मूलं—भवेदभ्यासतो वायुः सुषुम्नामध्यसङ्गतः॥अनेन वपुषः पुष्टिर्दृढबन्धोऽस्थि

पञ्जरे ॥ ४१ ॥ संपूर्णहृदयो योगी भव-
न्त्येतानि योगिनः ॥ बन्धेनानेन योगी-
न्द्रः साधयेत्सर्वमीप्सितम् ॥ ४२ ॥

टीका-अभ्याससे प्राणवायु सुषुम्णाके मध्यमें स्थित होगा और इस महाबंधके प्रभावसे शरीर पुष्ट रहैगा और अस्थिपंजर और शरीरका सब बन्ध दृढ अर्थात् बलिष्ठ हो जायगा और योगीका हृदय सन्तोषसे पूर्ण और आनन्दित रहेगा यह सब योगीको इस महा बन्धके प्रभावसे स्वयं लाभ होजायगा और इसी बन्धके साधनसे योगी अपने इच्छाके अनुसार सब सिद्ध करलेगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ महावेधकथनम् ॥

मूलं-अपानप्राणयोरैक्यं कृत्वा त्रिभुवने
श्वरि॥ महावेधस्थितो योगी कुक्षिमापूर्य
वायुना ॥ स्फिचौ संताडयेद्धीमान् वेधो-
ऽयं कीर्तितो मया ॥ ४३ ॥

टीका-हे त्रिभुवनेश्वरी अपान और प्राणको एक करके महावेध स्थित योगी उदरको वायुसे पूर्ण करके बुद्धिमान दोनों स्फिच अर्थात् पार्श्वको ताडन करे इसको हमनें वेध कहाहै ॥ ४३ ॥

मूलं—वेधेनानेन संविध्य वायुना योनिपुंगवः ॥ ग्रंथिं सुषुम्णामार्गेण ब्रह्मग्रंथिं भिनत्त्यसौ ॥ ४४ ॥

टीका—बुद्धिमान योगी इस वेधद्वारा वायुसे सर्व ग्रन्थीको वेधन करके सुषुम्णारन्ध्रद्वारा ब्रह्मग्रंथीको भेदन करताहै ॥ ४४ ॥

मूलं—यःकरोति सदाभ्यासं महावेधं सुगोपितं ॥ वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य जरामरणनाशिनी ॥ ४५ ॥

टीका—जो मनुष्य इस उत्तम महावेधको गोपित करके सर्वदा अभ्यास करेगा उसकी जरामरण नाशिनी वायु सिद्धि हो जायगी ॥ ४८ ॥

मूलं—चक्रमध्ये स्थितादेवाः कम्पन्ति वायुताडनात् ॥ कुण्डल्यपि महामाया कैलासे सा विलीयते ॥ ४६ ॥

टीका—शरीरस्थ चक्रमें जो देवताहैं वह वायुके ताडनसे कम्पायमान होते हैं और महामाया कुण्डलनी देवी कैलास अर्थात् ब्रह्मस्थानमें लय होती है तात्पर्य यहहै कि चक्रस्थित देवता अर्थात् गणेशजी ब्रह्मा विष्णु महादेवजी मायाधीश ज्योतिस्वरूप ईश्वर क्रमसे

आधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञाचक्रमेंजो स्थितहैं वायुके वेगसे चक्ररन्ध्रको छोडदेतेहैं तब वायुका प्रवेश होताहै इसहेतुसे यह महावेध अवश्य करना उचित है ॥ ४६ ॥

मूलं–महामुद्रामहाबन्धौ निष्फलौ वेधवर्जितौ ॥ तस्माद्योगी प्रयत्नेन करोति त्रितयं क्रमात् ॥ ४७ ॥

टीका–महामुद्रा और महाबन्ध विना वेधके निष्फलहै अर्थात् वेध न करनेसे मुद्रा और बन्धका कुछ फल नहोगा इसहेतुसे योगीको उचितहैकि यत्नपूर्वक क्रमसे तीनोंका अभ्यासकरे अर्थात् मुद्रा बन्ध वेध॥ ४७॥

मूलं–एतत्त्रयं प्रयत्नेन चतुर्वारं करोति यः ॥ षण्मासाभ्यन्तरं मृत्युं जयत्येव न संशयः ॥ ४८ ॥

टीका–जो यह मुद्रा बन्ध वेध तीनोंका अभ्यास यत्न करके रात्रि दिवसमें चार वार करेगा सो छःमास में निश्चय मृत्युको जीतलेगा इसमें संशय नहीं है ॥४८॥

मूलं–एतत्त्रयस्य माहात्म्यं सिद्धो जानाति नेतरः ॥ यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे सिद्धिं सम्यक् लभन्ति वै ॥ ४९ ॥

टीका-यह तीनोंके माहात्म्यको सिद्धलोग जानते हैं इतर लोग अर्थात् संसारिक मनुष्य नहीं जानते इसके जानलेनेसे साधक लोगोंको सर्वसिद्धिलाभ होतीहै ४९।

मूलं-गोपनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धि-मीप्सुभिः॥ अन्यथा च न सिद्धिः स्यान्मुद्राणामेष निश्चयः॥ ५०॥

टीका-सिद्धिकांक्षी साधकको उचित है कि यह सब मुद्राको यत्नपूर्वक गोप्य रक्खे इनको प्रकाश करनेसे कदापि सिद्धि नहोगी यह निश्चय है॥ ५०॥

अथ खेचरीमुद्राकथनम्॥

मूलं-भ्रुवोरन्तर्गतां दृष्टिं विधाय सुदृढां सुधीः॥ ५१॥ उपविश्यासने वज्रे नानो-पद्रववर्जितः॥ लम्बिकोर्ध्वं स्थिते गर्त्तें रसनां विपरीतगाम्॥ ५२॥ संयोजयेत् प्रयत्नेन सुधाकूपे विचक्षणाः॥ मुद्रैषा खेचरी प्रोक्ता भक्तानामनुरोधतः॥ ५३॥

टीका-बुद्धिमान साधक दोनों भ्रू अर्थात् भ्रुकुटी-के मध्यमें दृढ करके दृष्टिको स्थिर करके और नाना उपद्रव रहित होके वज्रासन अर्थात् सिद्धासनसे स्थित होयके जिह्वाको विपरीत अर्थात् ऊपर सुधाकूप स्वरूप

तालू विवरमें यत्नसे बुद्धिमान साधक संयोजितकरे अर्थात् संबन्धकरे हेपार्वती भक्तोंकेप्रति हमने प्रकाश करके यह खेचरी मुद्रा कहाहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

मूलं-सिद्धीनां जननी ह्येषा मम प्राणाधिकप्रिया ॥ निरन्तरकृताभ्यासात्पीयूषं प्रत्यहं पिबेत् ॥ तेन विग्रहसिद्धिः स्यान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ५४ ॥

टीका-यह खेचरीमुद्रा सर्वसिद्धीकी माताहै और हेदेवी हमको प्राणसेभी अधिक प्रियहै जो निरन्तर इस अभ्याससे नित्य अमृतपान करताहै उसकारणसे शरीर सिद्ध होजाताहै अर्थात् नाश नहींहोता और मृत्युरूप हस्तीकी यह खेचरीरूपी सिंह हन्ताहै ॥ ५४ ॥

मूलं-अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ॥ खेचरी यस्य शुद्धा तु स शुद्धो नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

टीका-अपवित्रहोय वा पवित्रहोय अथवा किसी अवस्थामें होय जिसको यह खेचरी मुद्रा सिद्धहै वह सर्वदा शुद्धहै इसमें संशय नहींहै ॥ ५५ ॥

मूलं-क्षणार्धं कुरुते यस्तु तीर्त्वा पापमहार्णवं ॥ दिव्यभोगान् प्रभुक्त्वा च सत्कुले स प्रजायते ॥ ५६ ॥

टीका—जो इस खेचरीमुद्राको क्षणार्धभी करेगा वह महापाप सागरके पार होके सुखपूर्वक स्वर्गका भोग भोगेगा पश्चात् उत्तम कुलमें उसका जन्म होगा ॥ ५६ ॥

मूलं—मुद्रैषा खेचरी यस्तु सुस्थचित्तो ह्यतन्द्रितः ॥ शतब्रह्मगतेनापि क्षणार्धं मन्यते हि सः ॥ ५७ ॥

टीका—जो मनुष्य इस खेचरीमुद्राको स्वस्थ चित्त ब्रह्मपरायणहोके करेगा उसको यदि शत ब्रह्माभी गत भावको प्राप्तहों क्षणार्ध प्रतीत होगा ॥ ५७ ॥

मूलं—गुरूपदेशतोमुद्रां यो वेत्ति खेचरीमिमां॥नानापापरतो धीमान् स याति परमां गतिम् ॥ ५८ ॥

टीका—गुरूपदेशसे जिसको यह खेचरीमुद्रा लाभ होगी वह यदि नानापापरतहोगा तो भी बुद्धिमान साधक परमगतिको प्राप्तहोगा अर्थात् मोक्ष होजायगा ॥ ५८ ॥

मूलं—सा प्राणसदृशी मुद्रा यस्मिन् कस्मिन् न दीयते ॥ प्रच्छाद्यते प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजिते ॥ ५९ ॥

टीका—हेसुरपूजिते पार्वती यह खेचरीमुद्रा प्राणके

बराबरहै सामान्य मनुष्यको देना उचित नहीं है इस मुद्राका यत्न करके गोपित रखनेमे कल्याणहै ॥५९॥

अथ जालन्धरबन्ध ॥

मूलं-बध्वागलशिराजालं हृदये चिबुकं न्यसेत् ॥बन्धो जालन्धरः प्रोक्तो देवाना-मपिदुर्लभः ॥६० ॥ नाभिस्थवह्निर्जन्तूनां सहस्रकमलच्युतं ॥ पिबेत्पीयूषविस्तारं तदर्थं बन्धयेदिमम् ॥ ६१ ॥

टीका-गुरूउपदेशद्वारा गलशिराजालको बांधके चिबुक अर्थात् ठोढीको हृदयमें स्थित करे इसको जालन्धर बन्ध कहतेहैं यह देवतोंकोभी दुर्लभहै नाभिस्थित जीव जठरानल सहस्रदल कमलसे जो अमृत स्रवताहै उसको पान करजाताहै इसहेतुसे यह जालन्धरबन्ध करना उचितहै तात्पर्य यहहै कि नाभिस्थित सूर्य अमृतको पान करजातेहैं इसीकारणसे मृत्यु होतीहै इस जालन्धरबन्धके करनेसे चंद्रमण्डलच्युतअमृत सूर्यमण्डलमें नहींजाता योगी आपही पान करकेचिरंजीव रहताहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

मूलं-बन्धेनानेन पीयूषं स्वयं पिबति बुद्धिमान् ॥ अमरत्वञ्च सम्प्राप्य मोदते भुवनत्रये ॥ ६२ ॥

टीका-इस जालन्धरबन्धके प्रभावसे बुद्धिमान् योगी स्वयं अमृत पान करताहै और अमरत्वको पायके तीनोंलोकमें आनन्द पूर्वक विचरताहै ॥ ६२ ॥

मूलं-जालन्धरो बन्ध एष सिद्धानां सिद्धिदायकः॥ अभ्यासः क्रियते नित्यं योगिना सिद्धिमिच्छता ॥ ६३ ॥

टीका-यह जालन्धबरन्ध सिद्धोंको सिद्धिदेनेवाला है इसकारणसे सिद्धिकांक्षी योगीको इसका नित्यअभ्यास करना उचितहै ॥ ॥ ६३ ॥

अथ मूलबन्ध ॥

मूलं-पादमूलेन संपीड्य गुदमार्गेषु यन्त्रितम् ॥६४॥ बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं सुचारयेत् ॥कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरा मरणनाशनः ॥ ६५ ॥

टीका-पादमूल अर्थात् एडीसे गुदामार्गको आकुञ्चन करके पीडितकरे और बलसे अपानवायुके आकर्षण करके ऊर्ध्वको लेजाय अर्थात् प्राणके साथ सम्बन्धकरे इसको मूलबन्ध कहतेहैं यहबन्ध जरा मरणका नाश करनेवालाहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

मूलं-अपानप्राणयोरैक्यं प्रकरोत्यधि-

कल्पितम्॥बन्धेनानेन सुतरां योनिमुद्रा प्रसिद्धयति ॥ ६६ ॥

टीका-इस कल्पितबन्धसे अपान और प्राणको एक करे और इसी मूलबन्धके प्रभावसे योनिमुद्रा आपही सिद्ध होजायगी ॥ ६६ ॥

मूलं-सिद्धायां योनिमुद्रायां किं न सिध्यति भूतले ॥ बन्धस्यास्य प्रसादेन गगने विजितानिलः ॥ पद्मासने स्थितो योगी भुवमुत्सृज्य वर्तते ॥ ६७ ॥

टीका-योनिमुद्राके सिद्ध होनेसे सिद्ध लोगोंको इस संसारमें सब सिद्ध होसक्ताहै इस मूलबन्धके प्रसादसे वायुको योगी जीतके पद्मासन स्थित होके भूमिको त्याग देगा और आकाशमें गमन करेगा ॥ ६७ ॥

मूलं-सुगुप्ते निर्जने देशे बन्धमेनं समभ्यसेत् ॥ संसारसागरं तर्तुं यदीच्छेद्योगिपुंगवः ॥ ६८ ॥

टीका-पवित्र योगी यदि संसारसागरसे पार होनेकी इच्छा करे तो निर्जनदेश और गुप्तस्थानमें इस मूलबन्धका अभ्यास करना उचित है ॥ ६८ ॥

अथ विपरीतकरणी मुद्रा ॥

मूलं-भूतले स्वशिरो दत्त्वा खे नयेच्चरणद्व-

यम् ॥ विपरीतकृतिश्चैषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ६९ ॥

टीका साधक अपने शिरको भूमिपर धरे और दोनों चरणको ऊपर आकाशमें निरालम्ब स्थिर करे यह विपरीत करणी मुद्रा सर्वतन्त्रोंकरके गोपितहै अर्थात् प्रकाश करने योग्य नहीं है ॥ ६९ ॥

मूलं–एतद्यः कुरुते नित्यमभ्यासं याममात्रतः ॥ मृत्युं जयति योगीशः प्रलये नापिसीदति ॥ ७० ॥

टीका–इस प्रकारसे इस मुद्राका अभ्यास नित्य एक प्रहर करे तो योगी निश्चय मृत्युको जीत लेगा और प्रलयमेंभी उसको कुछ कष्ट न होगा ॥ ७० ॥

मूलं–कुरुतेऽमृतपानं यः सिद्धानां समतामियात् ॥ स सेव्यः सर्वलोकानां बन्धमेनं करोति यः ॥ ७१ ॥

टीका–जो पुरुष शरीरस्थ अमृतपान करताहै उसको सिद्धोंकी समता प्राप्त होती है और इस मुद्राबन्धको जो करताहै वह सर्व लोकमें पूजनीयहै ॥ ७१ ॥

मूलं–नाभेरूर्ध्वमधश्चापि तानं पश्चिममाचरेत् ॥ उड्डियानबंध एष स्यात्सर्वदुःखौ-

घ नाशनः॥ ७२ ॥ उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं तु कारयेत् ॥ उड्डचानाख्योऽत्र बन्धोयं मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ७३ ॥

टीका—नाभिसे ऊपर और नीचेको आकुञ्चन करे इसको उड्डचानबन्ध कहते हैं यह दुःखके समूहको नाश करनेवालाहै उदरको पछि आकर्षण करे और नाभिसे ऊपर भागमें आकुञ्चनकरे यह उड्डचानबन्धहै और मृत्युरूपो मातङ्गका नाश करनेवाला यह बंधरूपी सिंहहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

मूलं—नित्यं यः कुरुते योगी चतुर्वारं दिने दिने ॥तस्य नाभेस्तु शुद्धिः स्याद्येन सिद्धो भवेन्मरुत् ॥ ७४ ॥

टीका—जो योगी नित्य इस बंधको चार बार अभ्यास करेगा उसका नाभिचक्र शुद्ध होके वायु सिद्ध होजायगा ॥ ७४ ॥

मूलं—षण्मासमभ्यसन्योगी मृत्युं जयति निश्चितम् ॥ तस्योदराग्निर्ज्वलति रसवृद्धिः प्रजायते ॥७५॥

टीका—योगी यदि छः मास इस बंधका अभ्यास करे तो निश्चय मृत्युको जीतलेगा और उसका जठरा-

नल विशेष प्रज्वलित होगा और रसकी वृद्धि उत्पन्न होगी ॥ ७५ ॥

मूलं-अनेन सुतरां सिद्धिर्विग्रहस्य प्रजायते ॥ रोगानां संक्षयश्चापि योगिनो भवति ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

टीका-इस उड्डयानबंधके प्रभावसे योगीका शरीर आपही सिद्ध हो जायगा अर्थात् अमर होजायगा और सर्व रोगोंका निश्चय क्षय होजायगा ॥ ७६ ॥

मूलं-गुरोर्लब्ध्वा प्रयत्नेन साधयेत्तु विचक्षणः ॥ निर्जने सुस्थिते देशे बन्धं परम दुर्लभम् ॥ ७७ ॥

टीका-गुरुसे यत्न पूर्वक इस परम दुर्लभ बन्धको लाभ करके बुद्धिमान साधक एकांत स्थानमें स्वस्थ चित्त होके साधन करे ॥ ७७ ॥

अथ वज्रोलीमुद्रा ॥

मूलं-वज्रोलीं कथयिष्यामि संसारध्वान्तनाशिनीम् ॥ स्वभक्तेभ्यः समासेन गुह्याद्गुह्यतमामपि ॥७८॥

टीका-हे देवी! संसारतम नाशनी परमगोपनीय वज्रोली मुद्रा भक्तलोगोंके प्रति हम कहतेहैं ॥ ७८ ॥

मूलं-स्वेच्छया वर्तमानोपि योगोक्तनियमैर्विना ॥ मुक्तो भवति गार्हस्थो वज्रोल्यभ्यासयोगतः ॥ ७९ ॥

टीका-गृहस्थ अपने इच्छा पूर्वक गृहमें भोग करेगा और योगमें जो नियम कहाहै उसके विना इस वज्रोली मुद्राके योग अभ्याससे मुक्तहोजायगा ॥ ७९ ॥

मूलं-वज्रोल्यभ्यासयोगोऽयं भोगयुक्तेपि मुक्तिदः ॥ तस्मादतिप्रयत्नेन कर्तव्यो योगिभिः सदा ॥ ८० ॥

टीका-यह वज्रोलीका योगअभ्यास भोग युक्त मनुष्योंके प्रति मुक्तिका दाताहै इसकारणसे अति यत्न करके सर्वदा योगीको अभ्यास करना उचितहै ॥ ८० ॥

मूलं-आदौ रजः स्त्रियो योन्या यत्नेन विधिवत्सुधीः ॥ आकुंच्य लिंगनालेन स्वशरीरेप्रवेशयेत् ॥ ८१ ॥ स्वकं बिंदुञ्च सम्बन्ध्य लिंगचालनमाचरेत् ॥ दैवाच्चलति चेदूर्ध्वं निबद्धो योनिमुद्रया ॥८२॥ वाममार्गेऽपि तद्विन्दुं नीत्वा लिङ्गं निवारयेत्॥ क्षणमात्रं योनितो यः पुमांश्चालन-

माचरेत् ॥ ८३ ॥ गुरूपदेशतो योगी हुंहु-ङ्कारेण योनितः ॥ अपानवायुमाकुंच्य बलादाकृष्य तद्रजः ॥ ८४ ॥

टीका-प्रथम बुद्धिमान साधक यत्न करके विधान पूर्वक स्त्रीके योनिसे रजको लिङ्गनालमें आकर्षण करके अपने शरीरमें प्रवेशकरे और अपने विन्दुको निरोध करके लिङ्ग चालनकरे यदि दैवात् विन्दु अपने स्थानसे चले तो योनिमुद्रासे निरोध करके ऊपरको आकर्षणकरे और उस विन्दुको वाम भागमें स्थित करके क्षणमात्र लिङ्ग चालन निवारणकरे फिर गुरूपदेशद्वारा योगी हुंहुंकार शब्द उच्चारण पूर्वक योनिमें लिङ्ग चालनकरे और बलसे अपानवायुको आकुञ्चन करके स्त्रीके रजको आकर्षणकरे इसको वज्रोली मुद्रा कहतेहैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

मूलं-अनेन विधिना योगी क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ॥ गव्यभुक् कुरुते योगी गुरुपादाब्जपूजकः ॥ ८५ ॥

टीका-इसविधानसे योगीको शीघ्र योग सिद्ध होगा और गुरुपादपद्मपूजक योगी शरीरस्थ अमृत पान करेगा ॥ ८५ ॥

मूलं–बिन्दुर्विधुमयो ज्ञेयो रजः सूर्यमयस्तथा॥ उभयोर्मेलनं कार्यं स्वशरीरे प्रवेशयेत् ॥८६॥

टीका–बिन्दुरूपी चन्द्र और रजरूपी सूर्य यह जानकर दोनोंका सम्बन्ध करके अपने शरीरमें प्रवेश करना उचितहै ॥ ८६ ॥

मूलं–अहं बिन्दू रजः शक्तिरुभयोर्मेलनं यदा ॥ योगिनां साधनावस्था भवेद्दिव्यं वपुस्तदा ॥ ८७ ॥

टीका–यदि शिवरूपी बिन्दु और रजरूपी शक्ति यह दोनोंका सम्बन्ध होगा तब योगीका साधनसे दिव्य शरीर अर्थात् देवतोंके समान शरीर होगा तात्पर्य यहहै कि शिवशक्ति अर्थात् माया ईश्वरके सम्बन्ध वा मायाको ईश्वरमें लय करनेसे जिसको अध्यारोप अपवाद कहतेहैं योगीमोक्ष होता है अभिप्राय यह है कि रज बिन्दुका सम्बन्ध जिस साधकको सिद्ध होजाताहै वह मुक्त है ॥ ८७ ॥

मूलं–मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणे ॥ तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम् ॥ ८८॥

टीका-बिन्दुपात होनेसे मृत्यु होती है और बिन्दुके धारणसे प्राणी जीवताहै इस कारणसे यत्नसे बिन्दुको धारण रखना उचित है ॥ ८८ ॥

मूलं-जायते म्रियते लोके बिन्दुना नात्र संशयः ॥ एतज्ज्ञात्वा सदा योगी बिन्दुधारणमाचरेत् ॥ ८९ ॥

टीका-प्राणीका जन्म मरण बिन्दुसे होताहै इसमें संशय नहीं है इसहेतुसे इसको विचारके योगीको उचितहै कि बिन्दुको सर्वदा धारण रक्खे ॥ ८९ ॥

मूलं-सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले ॥ यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशो भवेत् ॥ ९० ॥

टीका-हेपार्वती यत्नपूर्वक बिन्दुके सिद्ध होनेसे संसारमें क्या नहीं सिद्ध होसक्ता अर्थात् सब सिद्ध हो सक्ताहै इसीके प्रसादसे हमारी ऐसी महिमाहै ॥ ९० ॥

मूलं-बिन्दुः करोति सर्वेषां सुखं दुःखञ्च संस्थितः ॥ संसारिणां विमूढानां जरामरणशालिनाम् ॥ ९१ ॥ अयंच शांकरो योगो योगिनामुत्तमोत्तमः ॥ ९२ ॥

टीका-बिन्दु संसारी मनुष्योंके सुख और दुःखका

कारणहै और मूढ लोगोंके मूढताका और जरामरण शील लोगोंका अर्थात् सबका यही बिन्दु हेतुहै योगी लोगोंके प्रति यह हमारा उत्तम योगहै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

मूलं-अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति भोगयुक्तोऽपि मानवः ॥ सकलः साधितार्थोऽपि सिद्धो भवति भूतले ॥ ९३ ॥

टीका-भोगयुक्त मनुष्योंकोभी अभ्याससे सिद्धी प्राप्त होतीहै और सकल वाञ्छितफल संसारमें सिद्ध होजाताहै ॥ ९३ ॥

मूलं-भुक्त्वा भोगानशेषान् वै योगेनानेन निश्चितम्॥अनेन सकला सिद्धिर्योगिनां भवति ध्रुवम् ॥ सुखभोगेन महता तस्मादेनं समभ्यसेत् ॥ ९४ ॥

टीका-इस योगअभ्यासद्वारा निश्चय अशेषभोग भोगनेसे सुखी होगा और योगीलोगोंको इस वज्रोली मुद्रासे सकल सिद्धी अवश्य प्राप्तहोती हैं और महान सुख भोगते हुए यह साधना सिद्ध होगी इसलिए इसका अभ्यास करना उचितहै ॥ ९४ ॥

मूलं-सहजोल्यमरोली च वज्रोल्या भेदतो भवेत्॥ येनकेन प्रकारेण बिन्दुं योगी प्रधारयेत् ॥ ९५ ॥

टीका-वज्रोलीके भेदसे सहजोली और अमरोली मुद्राकी संज्ञाहै योगीको उचितहै कि सब प्रकारसे बिन्दुको धारण करे ॥ ९५ ॥

मूलं-दैवाच्चलति चेद्वेगे मेलनं चन्द्रसूर्ययोः ॥ अमरोलिरियं प्रोक्ता लिंगनालेन शोषयेत् ॥ ९६ ॥

टीका-यदि हठात वेगवश बिन्दुचले और रजबिन्दु का सम्बन्ध होजाय तो इसको अमरोली कहते हैं परंतु लिङ्गनाल द्वारा रजबिन्दु दोनोंको शोषणकरे ॥ ९६ ॥

मूलं-गतं बिन्दुं स्वकंयोगी बन्धयेद्योनिमुद्रया ॥ सहजोलिरियं प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ९७ ॥

टीका-निज बिन्दु चलायमान होय तो योगी योनि मुद्राके बन्धसे अवरोध करे इसको सहजोली कहतेहैं यह सर्व तन्त्रों करके गोपनीयहै ॥ ९७ ॥

मूलं-संज्ञाभेदाद्भवेद्भेदः कार्यं तुल्यगतिर्यदि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साध्यते योगिभिः सदा ॥ ९८ ॥

टीका-यदि कार्य एक समान है परन्तु संज्ञासे अमरोली और सहजोली दो भेद भयाहै इस हेतुसे

योगीको उचितहै कि यह दोनों अमरोली और सहजो-
लीका यत्न पूर्वक सर्वदा साधन करै ॥ ९८ ॥

मूलं–अयं योगो मया प्रोक्तो भक्तानां स्नेह-
तः प्रिये ॥ गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो
यस्य कस्यचित् ॥ ९९ ॥

टीका–हे प्रिये पार्वती हम भक्तोंपर प्रेम करके यह
योग जो कहाहै यत्नपूर्वक गोपनीयहै सामान्य मनुष्य
को कदापि देना उचित नहीं है ॥ ९९ ॥

मूलं–एतद्गुह्यतमं गुह्यं न भूतं न भविष्य-
ति ॥ तस्मादेतत्प्रयत्नेन गोपनीयं सदा
बुधैः ॥ १०० ॥

टीका–इस वज्रोलीमुद्रासे अधिक गोपनीय न कुछ
भयाहै न होगा इसकारणसे बुद्धिमान साधकको
यत्नपूर्वक इसको गोप्य रखना उचितहै ॥ १०० ॥

मूलं–स्वमूत्रोत्सर्गकालेयो बलादाकृष्य-
वायुना ॥ स्तोकं स्तोकं त्यजेन्मूत्रमूर्ध्व
माकृष्यतत्पुनः ॥ १०१ ॥ गुरूपदिष्टमा-
र्गेण प्रत्यहं यः समाचरेत् ॥ बिन्दुसिद्धि-
र्भवेत्तस्य महासिद्धिप्रदायिका ॥ १०२ ॥

टीका-गुरूके उपदेश पूर्वक सर्वदा मूत्रत्यागनेके समय बलकरके वायुसे आकर्षणपूर्वक थोडा थोडा मूत्र त्यागकरे फिर ऊपरको आकर्षण करे तो उसका विन्दु सिद्ध होजायगा यह बिन्दुकी सिद्धी महासिद्धीकी दाताहै अर्थात् परमपदको प्राप्त करतीहै ॥१०१॥१०२॥

मूलं-षण्मासमभ्यसेद्यो वै प्रत्यहं गुरुशिक्षया ॥ शतांगनेपि भोगेपि तस्य बिन्दुर्न नश्यति ॥ १०३ ॥

टीका-गुरूके शिक्षापूर्वक योगी यदि छःमास नित्य इसका अभ्यासकरै तो शत स्त्रीसे भोगकरेगा तो भी उसका बिन्दुपात नहोगा ॥ १०३ ॥

मूलं-सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति पार्वति ॥ ईशत्वं यत्प्रसादेन ममापि दुर्लभं भवेत् ॥ १०४ ॥

टीका-हेपार्वती जब महायत्नसे विन्दु सिद्ध होजायगा तब क्या नहीं सिद्धहोगा अर्थात् सब सिद्धहोजायगा इसके प्रसादसे यह दुर्लभ ईशत्व हमको प्राप्त भयाहै ॥ १०४ ॥

अथ शक्तिचालनमुद्रा ॥

मूलं-आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्डलीं

दृढाम् ॥ अपानवायुमारुह्य बलादाकृष्य बुद्धिमान् ॥ १०५ ॥ शक्तिचालनमुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ १०६ ॥

टीका—आधारकमलमें घोर निद्रित कुण्डलनीको बुद्धिमान् अपानवायुपर आरूढहोके आकर्षणपूर्वक हठात् चलावे अर्थात् भ्रमावे यह शक्तिचालनमुद्रा सर्वशक्तिकी दाताहै ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

मूलं—शक्तिचालनमेवं हि प्रत्यहं यः समाचरेत् ॥ आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य रोगाणां च विनाशनम् ॥ १०७ ॥

टीका—यह शक्तिचालनमुद्रा जो प्रतिदिनकरे तो उसके आयुकी वृद्धीहोगी और सर्वरोगोंका इस मुद्राके प्रभावसे नाश होजायगा ॥ १०७ ॥

मूलं—विहाय निद्रां भुजगी स्वयमूर्ध्वं भवेत्खलु ॥ तस्मादभ्यासनं कार्यं योगिना सिद्धिमिच्छता ॥ १०८ ॥

टीका—इस शक्ति चालनके साधनसे कुण्डलनी निद्राको त्यागके आपही ऊर्ध्वगामी होजायगी यह निश्चयहै इसहेतुसे सिद्धिकी इच्छा करनेवाले योगीको उचितहै कि इसका अभ्यासकरे ॥ १०८ ॥

मूलं–यः करोति सदाभ्यासं शक्तिचालन-मुत्तमं ॥ येन विग्रहसिद्धिः स्यादणिमा-दिगुणप्रदा ॥ गुरूपदेशविधिनातस्य मृ-त्युभयं कुतः ॥ १०९ ॥

टीका–यदि इस उत्तमशक्तिचालनमुद्राका सदा अभ्यासकरे तो उसका शरीर सिद्ध अर्थात् अमर हो-जायगा और यह मुद्रा अणिमादिक सिद्धिकी दाता है गुरुके उपदेशपूर्वक विधानसे जो इसका अभ्यास करे तो उसको मृत्युका भय नही है ॥ १०९ ॥

मूलं–मुहूर्तद्वयपर्यन्तं विधिना शक्तिचा-लनम् ॥११०॥यः करोति प्रयत्नेन तस्य सिद्धिरदूरतः ॥ युक्तासनेन कर्तव्यं यो-गिभिः शक्तिचालनम् ॥ १११ ॥

टीका–जो विधानपूर्वक यत्नसे यदि दोमुहूर्तपर्यंत शक्ति चालनकरे तो उसको सर्वसिद्धिकी प्राप्ति होगी योगीको उचितहैकि गुरूके उपदेशानुसार योग आसन से युक्तहोकें शक्तिचालनका अभ्यासकरे॥११०॥१११

मूलं–एतत्सुमुद्रादशकं न भूतं न भविष्य-ति ॥ एकैकाभ्यासने सिद्धिः सिद्धो भव-ति नान्यथा ॥ ११२ ॥

टीका-हेपार्वती यह दश मुद्रा जो हमने कहाहै इसके समान न कुछ भयाहै न होगा इसके एक एकके अभ्यास सिद्ध होनेसे साधक सिद्ध होजायगा ॥ ११२ ॥
॥ इतिश्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे मुद्राकथननामकश्चतुर्थपटलः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पंचमः पटलः ॥

मूलं-श्रीदेव्युवाच ॥ ब्रूहि मे वाक्यमीशान परमार्थधियं प्रति ॥ ये विघ्नाः सन्ति लोकानां वद मे प्रिय शङ्कर ॥ १ ॥

टीका-श्रीपार्वतीजी कहती हैं कि हे ईश्वर हेप्रिय शङ्कर योगाभ्यासी लोगोंके प्रति जो विघ्न संसारमें हैं सो भक्तोंपर कृपा करके हमको कहो ॥ १ ॥

मूलं-ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि यथा विघ्नाः स्थिताः सदा ॥ मुक्तिं प्रतिनराणाञ्च भोगः परमबन्धनः ॥ २ ॥

टीका-श्री ईश्वर कहतेहैं कि हेदेवी योग साधनमें जो विघ्नहैं सो हम कहते हैं सुनो मनुष्योंके मुक्तिके प्रति भोग परमबन्धनहै ॥ २ ॥

अथ भोगरूप योगविघ्नविद्याकथनं ॥

मूलं-नारी शय्यासनं वस्त्रं धनमस्य विड-

म्बनम् ॥ताम्बूलभक्षयानानि राज्यैश्वर्य-विभूतयः ॥३॥हैमं रौप्यं तथा ताम्रं रत्न-श्चागुरुधेनवः॥पाण्डित्यं वेदशास्त्राणि नृ-त्यंगीतं विभूषणम् ॥४॥ वंशी वीणा मृद-ङ्गाश्च गजेंद्रश्चाश्ववाहनम्॥दारापत्यानि विषया विघ्ना एते प्रकीर्तिताः ॥भोगरूपा इमे विघ्ना धर्म रूपानिमान् शृणु ॥ ५ ॥

टीका–नारीसंसर्ग शय्या उत्तमआसन वस्त्र धन यह सब मोक्षके प्रति विडम्बनाहै ताम्बूलसेवन रथ शिबिका आदि सवारी राज ऐश्वर्य भोग स्वर्ण रजत ताम्र अनेक प्रकारके रत्न गोधन आदिका संग्रह पा-ण्डित्य करना वेदशास्त्रमें तर्क करना नृत्य गीत भूषण वंशी वीणा मृदङ्गादिक वाद्य बजाना गज अश्व आदि वाहन स्त्री पुत्र केवल गुरुकी सेवा छोडके हे पार्वती यह जो कहाहै सो भोगरूप विघ्नहै अब धर्मरूप विघ्न कहतेहैं श्रवण करो ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ धर्मरूपयोगाविघ्नकथनं॥

मूलं–स्नानं पूजाविधिर्होमं तथा मोक्ष मयी स्थितिः ॥ व्रतोपवासनियममौ-

नमिन्द्रियनिग्रहः ॥६॥ ध्येयो ध्यानं तथा मन्त्रो दानं ख्यातिर्दिशासु च॥ वापीकूपतडागादिप्रासादारामकल्पना ॥ ७ ॥ यज्ञं चान्द्रायणं कृच्छ्रं तीर्थानि विविधानि च॥ दृश्यन्ते च इमे विघ्ना धर्मरूपेण संस्थिताः॥ ८॥

टीका—स्नानविधि पूजा होम और सुखपूर्वक स्थिति व्रत उपवास नियम मौन इन्द्रियनिग्रह ध्येय किसी का ध्यान करना मन्त्र जप दान सर्वत्र प्रसिद्धहोना बावडी कूप तालाव मंदिर बगीचा आदिक बनवाना यज्ञ करना पापक्षयके हेतु चांद्रायण कृच्छ्र व्रत करना तीर्थोंमें भ्रमण करना यह सब धर्म रूप विघ्नहैं॥६।७।८

अथ ज्ञानरूपविघ्नकथनं ॥

मूलं—यत्तु विघ्नंभवेज्ज्ञानं कथयामि वरानने॥ ९ ॥ गोमुखं स्वासनं कृत्वा धौतिप्रक्षालनं च तत् ॥ नाडीसञ्चारविज्ञानं प्रत्याहारनिरोधनम्॥ १०॥ कुक्षिसंचालनं क्षिप्रं प्रवेश इन्द्रियाध्वना ॥ नाडीकर्माणि कल्याणि भोजनं श्रूयतां मम ॥ ११॥

टीका—हे देवी हे वरानने अब ज्ञानरूप विघ्न कहतेहैं

सुनो अन्तःशुद्धिके अर्थ गोमुखके सदृश वस्त्र भक्षण करके तब धौति प्रक्षालन करना अर्थात् धौतियोग करना नाडीचालनका ज्ञान वायुका प्रत्याहर निरोध करना कुण्डलनीके बोधार्थ उदरको भ्रमावना इन्द्रिय-द्वारा शीघ्र प्रवेश नाडीकर्म अर्थात् नाडी शुद्धिके हेतु आहारीय विचार यह सब ज्ञानरूप विघ्नहैं हेदेवी क-ल्याणी नाडीशुद्धीके अर्थ जो भोजनविधि हैं सो हम कहतेहैं सुनो ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

मूलं–नवधातुरसं छिन्धि शुण्ठिकास्ताड-
येत् पुनः ॥ एककालं समाधिः स्याल्लिंग-
भूतमिदं शृणु ॥ १२ ॥

टीका–नवीन रस सहित भोजन वस्तु और शुण्ठो-चूर्ण भोजनकरे इससे शीघ्र समाधि होजायगी हे देवी अब उसका चिह्न कहतेहैं सुनो ॥ १२ ॥

मूलं–सङ्गमं गच्छ साधूनां सङ्कोचं भज दु-
र्जनात् ॥ प्रवेशनिर्गमे वायोर्गुरुलक्षं
विलोकयेत् ॥ १३ ॥

टीका–साधुके सङ्गकी अभिलाषा और दुर्जनसे अ-लगरहनेका विचार रखना और वायुका निर्गममें प्रवे-श करना और वायुके निरोध समय मात्रासे गुरुलघुके विचारार्थ संख्या करना ॥ १३ ॥

मूलं–पिण्डस्थं रूपसंस्थञ्च रूपस्थं रूपव-
र्जितम् ॥ ब्रह्मैतस्मिन्मतावस्था हृदयञ्च
प्रशाम्यति ॥ इत्येते कथिता विघ्ना ज्ञान-
रूपे व्यवस्थिताः ॥ १४ ॥

टीका–शरीरस्थरूपका विचार रखना और रूप कु-
रूपका निर्णय करना और यह जगत् ब्रह्महै ऐसे वि-
चारसे हृदयमें स्थिरता रखना हेपार्वती यह जो कहा
है सो सब ज्ञानरूप विघ्नहैं ॥ १४ ॥

अथ चतुर्विधयोगकथनम् ॥

मूलं–मन्त्रयोगो हठश्चैव लययोगस्तृतीय-
कः ॥ चतुर्थो राजयोगः स्यात्स द्विधा
भाववर्जितः ॥ १५ ॥

टीका–योग चार प्रकारकाहै मन्त्रयोग हठयोग
और तीसरा लययोग और चौथा राजयोगहै यह राज-
योग द्वैत भावसे रहितहै अर्थात् राजयोग सिद्धहो
जानेसे जीव ईश्वरमें लयहोजाताहै और कुछ बोध नहीं
होता ॥ १५ ॥

मूलं–चतुर्धा साधको ज्ञेयो मृदुमध्याधि-
मात्रकाः ॥ अधिमात्रतमः श्रेष्ठो भवा-
ब्धौ लंघनक्षमः ॥ १६ ॥

टीका–यहयोगचतुष्टयके साधकभी चार प्रकारके होते हैं अर्थात् मृदु मध्यम अधिमात्र और अधिमात्र-तम यह अधिमात्रतम साधक सबमें श्रेष्ठ है एही साधक संसाररूपी समुद्रके पार होनेमें समर्थ होताहै॥१६॥

अथ मृदुसाधकलक्षणम् ॥

मूलं–मन्दोत्साही सुसंमूढो व्याधिस्थो गुरुदूषकः ॥ लोभी पापमतिश्चैव बह्वाशी वनिताश्रयः॥१७॥ चपलः कातरो रोगी पराधीनोऽतिनिष्ठुरः ॥ मन्दाचारो मन्दवीर्यो ज्ञातव्यो मृदुमानवः॥१८॥ द्वादशाब्दे भवेत्सिद्धिरेतस्य यत्नतः परम् ॥ मन्त्रयोगाधिकारी स ज्ञातव्यो गुरुणा ध्रुवम्॥१९॥

टीका–अब मृदुसाधकलक्षण कहतेहैं मन्द उत्साही मूढ चित्त व्याधिग्रसित गुरुनिन्दक लोभी जिसकी सर्वदा पापबुद्धिरहै बहुत भोजन करनेवाला स्त्रीके वशमेंहो चञ्चलहो कातरहो रोगीहो पराधीनहो कठोर बोलनेवालाहो जिसके मन्द कर्महों मंदवीर्यवालाहो ऐसे पुरुषको मृदुमानव कहतेहैं यह मन्त्रयोगका अधिकारीहै यत्न करनेसे और गुरुके कृपासे इसकोभी

बारह वर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

मूलं–समबुद्धिः क्षमायुक्तः पुण्यकांक्षी प्रियव्वँदः ॥ मध्यस्थः सर्वकार्येषु सामान्यः स्यान्न संशयः ॥ २० ॥ एतज्ज्ञात्वैव गुरुभिर्दीयते मुक्तितो लयः ॥ २१ ॥

टीका–अब मध्यसाधक लक्षण कहतेहैं सामान्य बुद्धिहो क्षमावानहो पुण्यकर्म करनेमें इच्छा रखताहो प्रियबोलताहो सर्वकार्यमें मध्यस्थ रहताहो अर्थात् न हर्ष न विषाद इसको मध्य साधक कहतेहैं यह निश्चयहै गुरु इसको विचारके मुक्ति मार्ग जो लय योगहै उसका उपदेशकरे ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ अधिमात्रसाधकलक्षणम् ॥

मूलं–स्थिरबुद्धिर्लये युक्तः स्वाधीनो वीर्यवानपि ॥ महाशयो दयायुक्तः क्षमावान् सत्यवानपि ॥ २२ ॥ शूरो वयस्थः श्रद्धावान् गुरुपादाब्जपूजकः ॥ योगाभ्यासरतश्चैव ज्ञातव्यश्चाधिमात्रकः ॥ २३ ॥ एतस्य सिद्धिः षड्वर्षैर्भवेदभ्यासयोगतः ॥ एतस्मै दीयते धीरो हठयोगश्च साङ्गतः २४

टीका–यह अधिमात्र साधक लक्षण कहतेहैं स्थिर

बुद्धिहो लययोगमें समर्थहो स्वतन्त्रहो अर्थात् किसीके आधीन नहो वीर्यवानहो महाशयहो दयावानहो क्षमा-वानहो सत्यवादीहो शूरहो समाधियोगमें श्रद्धाहो गुरुपादपद्म पूजकहो योगाभ्यासरतहो ऐसे गुणवाले पुरुषको अधिमात्र कहतेहैं योगअभ्याससे ऐसे पुरुष-को छःवर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी गुरुको उचितहै कि ऐसे धीर पुरुषको अङ्गसहित हठयोगका उपदेश करें ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ अधिमात्रतमसाधकलक्षणम् ॥

मूलं–महावीर्यान्वितोत्साही मनोज्ञः शौ-र्यवानपि॥शास्त्रज्ञोऽभ्यासशीलश्च निर्मो-हश्च निराकुलः॥२५॥ नवयौवनसम्पन्नो मिताहारी जितेंद्रियः॥ निर्भयश्च शुचि-र्दक्षो दाता सर्वजनाश्रयः ॥ २६ ॥ अधि-कारी स्थिरो धीमान् यथेच्छावस्थितः क्षमी॥ सुशीलो धर्मचारी च गुप्तचेष्टः प्रि-यँव्वदः ॥ २७ ॥ शास्त्रविश्वाससम्पन्नो देवतागुरुपूजकः॥ जनसंगविरक्तश्च म-हाव्याधिविवर्जितः ॥ २८॥ अधिमात्र-तरो ज्ञेयः सर्वयोगस्य साधकः॥ त्रिभिः

सँवत्सरैः सिद्धिरेतस्य नात्र संशयः ॥
सर्वयोगाधिकारी स नात्र कार्या विचा-
रणा ॥ २९ ॥

टीका–महावीर्यवान उत्साहयुक्त स्वरूपवान शूर-
तासम्पन्न शास्त्रज्ञ अभ्यासशील अर्थात् श्रुतिधर मो
हसे हीन आकुलतारहित अर्थात् सावधान नवीन
यौवनसम्पन्न अर्थात् तरुण प्रमाणभोजी जितेन्द्रिय
निर्भय पवित्र आचार सर्वकर्ममें निपुण दानशील
शरणागतपालक स्थिरचित्त बुद्धिमान सन्तोषयुक्त
क्षमावान शीलवान धार्मिक कर्मोंको गोप्य रखनेवाला
प्रियसत्यवादी शास्त्रमें विश्वास देवता और गुरुपूजक
जनसङ्गरहित महाव्याधिरहित ऐसे गुण जिसमें हों
वह अधिमात्रतर है और सर्वयोगका साधकहै इसको
तीनवर्षमें सिद्धि प्राप्त होगी इसमें संशय नहींहै यह
सर्वयोगका अधिकारी है ऐसे पुरुषको गुरु समस्त
योगका उपदेश करदें इसमें विचारका कुछ प्रयोजन
नहींहै ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ प्रतीकोपासनम् ॥

मूलं–प्रतीकोपासना कार्या दृष्टादृष्टफल-
प्रदा ॥ पुनाति दर्शनादत्र नात्र कार्या
विचारणा ॥ ३० ॥

टीका-अब प्रतीकउपासना कहतेहैं प्रतीकउपासनासे दृष्टादृष्टफल लाभ होताहै और उसके दर्शनसे मनुष्य पवित्र होताहै इसमें संशय नहींहै ॥ ३० ॥

मूलं-गाढातपे स्वप्रतिबिम्बितेश्वरं निरीक्ष्य विस्फारितलोचनद्वयम्॥ यदा नभः पश्यति स्वप्रतीकं नभोंगणे तत्क्षणमेव पश्यति ॥ ३१ ॥

टीका-गाढ आतपमें अर्थात् गहरेधूपमें स्वईश्वरका प्रतिबिम्ब नेत्रस्थिरकरके देखे जब अपने छायाका प्रतिबिम्ब शून्यमें देखपडे तब ऊपर आकाशमें अपने प्रतिबिम्ब अवश्य देखेगा ॥ ३१ ॥

मूलं-प्रत्यहं पश्यते यो वै स्वप्रतीकं नभोङ्गणे ॥आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य न मृत्युः स्यात्कदाचन ॥ ३२ ॥

टीका-जो नित्य आकाशमें स्वप्रतीक अर्थात् अपना प्रतिबिम्ब देखेगा उसके आयुकी वृद्धि होगी और उसकी मृत्यु कभी न होगी अर्थात् चिरंजीवी हो जायगा ॥ ३२ ॥

मूलं-यदापश्यतिसम्पूर्णस्वप्रतीकं नभो-

ङ्गणे॥ तदा जयं सभायाञ्च युद्धे निर्जित्य सञ्चरेत्॥ ३३ ॥

टीका-जब सम्पूर्ण अपना प्रतिविम्ब आकाशमें देखे तब सभामें उसकी जय होय और युद्धमें शत्रुको जीतलेगा ॥ ३३ ॥

मूलं-यःकरोति सदाभ्यासं चात्मानं वन्द ते परम् ॥ पूर्णानन्दैकपुरुषं स्वप्रतीकप्रसादतः ॥ ३४ ॥

टीका-जो सर्वदा स्वप्रतीक उपासनाका अभ्यास करे तो उसको आत्माकी प्राप्ति होगी और उसी स्वप्रतीकके प्रसादसे पूर्णानन्द स्वरूप अर्थात् आत्माका दर्शन होगा तात्पर्य यहहै कि जब हृदयाकाशमें अपनें स्वरूपका अनुभव होगा तब आत्माकी परम ज्योतिका प्रकाश होगा ॥ ३४ ॥

मूलं-यात्राकाले विवाहे च शुभे कर्मणि सङ्कटे॥ पापक्षये पुण्यवृद्धौ प्रतीकोपासनञ्चरेत् ॥३५॥

टीका-यात्राकालमें और विवाहके समयमें और शुभकर्ममें और पुण्यवृद्धिके अर्थ स्वप्रतीक अर्थात् अपने प्रतिबिम्बका दर्शन करे तो सर्वदा कल्याण होगा ॥ ३५ ॥

मूलं-निरन्तरकृताभ्यासादन्तरे पश्यति ध्रुवम् ॥ तदा मुक्तिमवाप्नोति योगी नियतमानसः ॥ ३६ ॥

टीका-सर्वदा प्रतीकोपासनाके अभ्यास करनेसे निश्चय हृदयाकाशमें अपना प्रतिबिंब भान होगा तब निश्चयआत्मा योगीको मुक्ति प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥

मूलं-अंगुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां द्विलोचने ॥ नासारन्ध्रे च मध्याभ्यामनामाभ्यां मुखं दृढम् ॥ ३७ ॥ निरुध्य मारुतं योगी यदैव कुरुते भृशं ॥ तदा तत्क्षणमात्मानं ज्योतीरूपं स पश्यति॥३८॥

टीका-दोनों अङ्गुष्ठसे दोनों कर्ण बंद करे और दोनों तर्जनीसे दोनों नेत्रको बंद करे और दोनों मध्यमा अङ्गुलीसे दोनों नासारंध्रको बंद करे और दोनों अनामिका अङ्गुली और कनिष्ठासे मुखको बंद करे यदि इसप्रकार योगी वायुको निरोध करके इसका वारंवार अभ्यास करे तो आत्मा ज्योतिस्वरूपका हृदयाकाशमें भान होगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मूलं-तत्तेजो दृश्यते येन क्षणमात्रं निराकुलम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ३९ ॥

टीका—आत्माका यह परमतेज जो पुरुष स्थिर-चित्त होके क्षणमात्रभी देखेगा वह सर्वपापसे मुक्तहोके परमगतिको प्राप्तहोगा ॥ ३९ ॥

मूलं—निरन्तरकृताभ्यासाद्योगीविगतक-ल्मषः ॥ सर्वदेहादि विस्मृत्य तदभिन्नः स्वयं गतः ॥ ४० ॥

टीका—निरंतर जो योगी शुद्धचित्त होके यह प्रतीकोपासनाका अभ्यास करेगा वह सर्व देहादिक-र्मसे रहित होके आत्मासे अभिन्न होजायगा अर्थात् आत्मस्वरूप होजायगा ॥ ४० ॥

मूलं—यः करोति सदाभ्यासं गुप्ताचारेण मानवः ॥स वै ब्रह्मविलीनः स्यात्पापकर्म रतो यदि ॥ ४१ ॥

टीका—जो मनुष्य गुप्ताचारसे इसका सर्वदा अभ्यास करताहै सो यदि पापकर्मरतभीहो तथापि उसका मोक्ष होगा ॥ ४१ ॥

मूलं—गोपनीयः प्रयत्नेन सद्यः प्रत्ययका-रकः ॥ निर्वाणदायको लोके योगोयं मम वल्लभः ॥ नादः संजायते तस्य क्रमे-णाभ्यासतश्च यः ॥ ४२ ॥

टीका—जो इसका अभ्यास करेगा उसको क्रमसे नाद उत्पन्न होगा हेदेवी यह प्रतीकोपासना निर्वाण योगका दाताहै इसहेतुसे हमको अतिप्रियहै यह शीघ्र फल दाताहै इसको यत्नसे गोप्य रखना उचितहै ॥ ४२ ॥

मूलं—मत्तभृङ्गवेणुवीणासदृशः प्रथमोध्वनिः ॥ ४३ ॥ एवमभ्यासतः पश्चात् संसारध्वान्तनाशनम् ॥ घण्टानादसमः पश्चात् ध्वनिर्मेघरवोपमः ॥ ४४ ॥ ध्वनौ तस्मिन्मनो दत्त्वा यदा तिष्ठति निर्भरः ॥ तदा संजायते तस्य लयस्य मम वल्लभे॥४५॥

टीका—योग अभ्यासद्वारा प्रथम मत्त भ्रमरकी नाई शब्द और वेणु और वीणाके समान शब्द उत्पन्न होगा इसी तरह योग अभ्यास संसारतम नाशकसे फिर घंटानाद समान शब्द होगा फिर मेघ गर्जनिके समान ध्वनि होगी हे प्रिय पार्वती उस ध्वनिमें यदि मन निश्चल स्थित हो जाय तब मोक्षका दाता लय उत्पन्न होगा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

मूलं—तत्र नादे यदा चित्तं रमते योगिनो भृशं ॥ विस्मृत्य सकलं बाह्यं नादेन सह शाम्यति ॥ ४६ ॥

टीका जब योगीका चित्त उस नादमें निरंतर रम णकरेगा तब सकल विषयसे स्मरण रहित होके चित्त समाधिमें लय होजायगा ॥ ४६ ॥

मूलं–एतदभ्यासयोगेन जित्वा सम्यक् गुणान् बहून् ॥ सर्वारम्भपरित्यागी चिदाकाशे विलीयते ॥ ४७ ॥

टीका–इसी प्रकार योग अभ्यास द्वारा सर्व गुणोंको जीतके और सब कार्योंके आरंभको त्यागके योगी आनंदपूर्वक चैतन्यस्वरूप हृदयाकाशमें लय होजायगा ॥ ४७ ॥

मूलं–नासनं सिद्धसदृशं न कुम्भसदृशं बलम् ॥ न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः ॥ ४८ ॥

टीका–हेदेवी सिद्धासनके समान कोई और आसन नहीं है और न कुम्भकके समान कोई बलहै और न खेचरीके समान कोई मुद्राहै और न नादके समान कोई दूसरा लयहै ॥ ४८ ॥

अथ मूलाधारपद्मविवरणम् ॥

मूलं–इदानीं कथयिष्यामि मुक्तस्यानुभवं

प्रिये॥ यज्ज्ञात्वा लभते मुक्तिं पापयुक्तोऽपि साधकः ॥ ४९ ॥

टीका-हेप्रिये पार्वती अब मुक्तिका अनुभव तुमसे कहतेहैं जिसके ज्ञानसे पापयुक्त साधकभी मुक्तिलाभ करताहै ॥ ४९ ॥

मूलं-समभ्यर्च्येश्वरं सम्यक् कृत्वा च योगमुत्तमम्॥ गृह्णीयात्सुस्थितो भूत्वा गुरुं सन्तोष्य बुद्धिमान् ॥ ५० ॥

टीका-योगकांक्षी साधक सम्यक्प्रकारसे ईश्वरकी पूजा करके स्वस्थचित्तसे योगासनपर बैठके बुद्धिमान गुरुको सर्व प्रकारसे प्रसन्न करके यह उत्तम योग ग्रहणकरे ॥ ५० ॥

मूलं-जीवादि सकलं वस्तु दत्त्वा योगविदं गुरुं ॥ सन्तोष्यादिप्रयत्नेन योगोयं गृह्यते बुधैः ॥ ५१ ॥

टीका-बुद्धिमान साधक जीवादि सकल पदार्थ योगविद गुरूके अर्पण करके उनके प्रसन्नतापूर्वक यत्न करके यह योग ग्रहण करते हैं ॥ ५१ ॥

मूलं-विप्रान् सन्तोष्य मेधावी नानामंगलसंयुतः ॥ ममालये शुचिर्भूत्वा गृह्णीयाच्छुभमात्मनः ॥ ५२ ॥

टीका-योगग्रहणके समय बुद्धिमान् साधक ब्राह्मणको सन्तोष करके अर्थात् द्रव्यादिक प्रदानपूर्वक प्रसन्न करके अनेक आशिर्वाद श्रवण करके पवित्रतासे शिवमंदिरमें बैठके आत्माके अर्थ जो यह शुभयोग है इसको ग्रहणकरे ॥ ५२ ॥

मूलं-संन्यस्यानेन विधिना प्राक्तनं विग्रहादिकम् ॥ भूत्वा दिव्यवपुर्योगी गृह्णीयात् वक्ष्यमाणकम् ॥ ५३ ॥

टीका-साधक इस विधानसे पूर्व शरीर गुरूके कृपासे त्यागके दिव्य शरीर होके जो आगे कहेंगे वह योग ग्रहण करे तात्पर्य यहहैकि योग ग्रहणके समयसे साधकका शरीर दिव्य होजाताहै व्याधि और अज्ञानका शरीर नहीं रहजाता इसहेतुसे योग ग्रहणके समय साधक यह चिंतनकरे कि पूर्व शरीरको हमने त्यागके दिव्यशरीर धारण किया ॥ ५३ ॥

मूलं-पद्मासनस्थितो योगी जनसंगविवर्जितः ॥ विज्ञाननाडीद्वितयमङ्गुलीभ्यां निरोधयेत् ॥ ५४ ॥

टीका-योगी संगरहित पद्मासनमें स्थितहोके दोनों विज्ञाननाडी अर्थात् इडा और पिंगलाको दो अंगुलीसे निरोध करे ॥ ५४ ॥

मूलं–सिद्धेस्तदाविर्भवति सुखरूपी निरञ्जनः॥ तस्मिन् परिश्रमः कार्यो येन सिद्धो भवेत् खलु॥ ५५॥

टीका–यह योग सिद्ध होनेसे साधकके हृदयमें सुखरूपी निरंजन परब्रह्म चैतन्यस्वरूपका प्रकाशहोगा इसहेतुसे यह योगमें साधकको परिश्रम कर्तव्यहै इससे निश्चय यह योग सिद्ध होजायगा॥ ५५॥

मूलं–यः करोति सदाभ्यासं तस्य सिद्धिर्न दूरतः॥वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य क्रमादेव न संशयः॥ ५६॥

टीका–जोमनुष्य इस योगका सर्वदा अभ्यास करेगा उसको सर्वसिद्धि प्राप्त होगी और निश्चय आपही क्रमसे वायु सिद्ध होजायगा॥ ५६॥

मूलं–सकृद्यः कुरुते योगी पापौघं नाशयेद्ध्रुवं॥ तस्य स्यान्मध्यमे वायोः प्रवेशो नात्र संशयः॥ ५७॥

टीका–जो योगी प्रतिदिन एकवार यह अभ्यास करे तो उसके सर्वपापोंका नाश होजायगा और उसका प्राणवायु निश्चय सुषुम्णामें प्रवेश करेगा॥ ५७॥

मूलं–एतदभ्यासशीलो यः स योगी देवपू-

जितः ॥ अणिमादिगुणान् लब्ध्वा विचरे-द्भुवनत्रये ॥ ५८ ॥

टीका—यह अभ्यासशील योगी देवतोंसे पूजितहै और अणिमादिक सिद्धि लाभ करके तीनोंलोकमें इ-च्छापूर्वक विचरेगा ॥ ५८ ॥

मूलं—यो यथास्यानिलाभ्यासात्तद्भवेत्तस्य विग्रहः॥तिष्ठेदात्मनि मेधावी संयुतः क्री-डते भृशम् ॥ ५९ ॥

टीका—जिस प्रकार वायुका अभ्यास करेगा उसी तरह साधकका शरीर सिद्ध हो जायगा और बुद्धिमान पुरुष आत्मामें स्थितहोके सर्वदा क्रीडा करेगा॥५९॥

मूलं—एतद्योगं परं गोप्यं न देयं यस्य क-स्यचित् ॥ सप्रमाणैः समायुक्तस्तमेव कथ्यते ध्रुवम् ॥ ६० ॥

टीका—यह योग परम गोपनीयहै अनधिकारीको कदापि देनेके योग्य नहीं है परन्तु प्रमाणयुक्त अर्थात पूर्वोक्त लक्षणयुक्त साधकको अवश्य देना उचितहै६०॥

मूलं—योगी पद्मासने तिष्ठेत् कण्ठकूपे य-दास्मरन् ॥जिह्वां कृत्वा तालुमूले क्षुत्पि-पासा निवर्तते ॥ ६१ ॥

टीका—पद्मासन स्थित योगी जब कण्ठकूपका स्मरण अर्थात् उस स्थानमें मनको लय करके जिह्वा को तालुमूलमें स्थित करेगा तब क्षुधा और पिपासा से रहित हो जायगा ॥ ६१ ॥

मूलं—कण्ठकूपादधः स्थाने कूर्मनाड्यस्ति शोभना॥तस्मिन् योगी मनो दत्त्वा चित्त स्थैर्यं लभेद्भृशम् ॥ ६२ ॥

टीका—कण्ठकूपके नीचे कूर्मनाडी शोभितहै उस नाडीमें योगी मनको स्थिर करके अत्यंत चित्तकी स्थिरता पावेगा ॥ ६२ ॥

मूलं—शिरः कपाले रुद्राक्षं विवरं चिन्तयेद्य दा॥तदा ज्योतिःप्रकाशः स्याद्विद्युत्पुञ्जसमप्रभः ॥६३॥ एतच्चिन्तनमात्रेण पापानां संक्षयो भवेत्॥दुराचारोऽपि पुरुषो लभते परमं पदम् ॥६४॥

टीका—शिर और कपालमें जो रुद्राक्ष विवरहै उसमें यदि चिंतना करे तो विद्युत्पुञ्जके समान आत्मज्योतिका प्रकाश होगा और इसके चिन्तन मात्रसे योगीका सर्व पाप नष्ट होजायगा यदि दुराचारमेंभी जो पुरुष आसक्तहै वहभी परम गतिको प्राप्त होगा ॥६३॥६४॥

मूलं–अहर्निशं यदा चिन्तां तत्करोति वि-
चक्षणः ॥ सिद्धानां दर्शनं तस्य भाषणञ्च
भवेद्ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

टीका–जो बुद्धिमान साधक रात्रि दिवस यह चि-
न्तवन करतेहैं उनको सिद्ध लोगोंका अवश्य दर्शन
और उनसे भाषण होताहै ॥ ६५ ॥

मूलं–तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् भुञ्जन् ध्याये-
च्छून्यमहर्निशम् ॥ तदाकाशमयो योगी
चिदाकाशे विलीयते ॥ ६६ ॥

टीका–जो पुरुष चलते बैठे सोते भोजन करते रा-
त्रिदिवस यह ध्यान करतेहैं सो आकाशस्वरूप योगी
चिदाकाश अर्थात् परमात्मामें लय होजातेहैं ॥ ६६ ॥

मूलं–एतज्ज्ञानं सदाकार्यं योगिना सिद्धि-
मिच्छता ॥ निरन्तरकृताभ्यासान्मम
तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ एतज्ज्ञानबलाद्योगी
सर्वेषां वल्लभो भवेत् ॥ ६७ ॥

टीका–सिद्धिकांक्षी योगीको इस ध्यानका सर्वदा
अभ्यास करना उचितहै सर्वदा अभ्यास करनेसे हे-
पार्वती हमारे तुल्य होजायगा निश्चय इस ज्ञानबलसे
योगी सबको अर्थात् त्रैलोक्यको प्रिय होजाताहै ॥ ६७ ॥

मूलं—सर्वान् भूतान् जयं कृत्वा निराशी रपरिग्रहः ॥ ६८ ॥ नासाग्रे दृश्यते येन पद्मासनगतेन वै ॥ मनसो मरणं तस्य खेचरत्वं प्रसिद्ध्यति ॥ ६९ ॥

टीका—योगी सर्व भूतोंको जय करके और क्षुधा और इच्छाको जीतके पद्मासनसे स्थितहोके जो नासाग्रमें देखताहै उसका मन स्थिर होजाताहै तब खेचरत्व सिद्धहोताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मूलं—ज्योतिः पश्यति योगीन्द्रः शुद्धं शुद्धाचलोपमम् ॥ तत्राभ्यासबलेनैव स्वयं तद्रक्षको भवेत् ॥ ७० ॥

टीका—शुद्ध अचलके समान परमज्योति योगी देखताहै तब अभ्यासबलसे आपही उसका रक्षकहोताहै अर्थात् ज्योति देखनेके अभ्यासकी रक्षा करताहै॥ ७०॥

मूलं—उत्तानशयने भूमौ सुप्त्वा ध्यायन्निरन्तरं ॥ सद्यः श्रमविनाशाय स्वयं योगी विचक्षणः ॥ ७१ ॥ शिरः पश्चात्तु भागस्यध्याने मृत्युञ्जयो भवेत् ॥ भ्रूमध्ये दृष्टिमात्रेण ह्यपरः परिकीर्तितः ॥ ७२ ॥

टीका—बुद्धिमान् योगी भूमिमें उत्तानशयन करके निरन्तर ध्यान करे तो तत्काल आपही श्रमका नाश होजायगा और शिरके पृष्ठभागका ध्यान करनेसे योगी मृत्युका जीतनेवाला होजायगा और भूके मध्यमें जो दृष्टिमात्रसे फल होताहै सो हेदेवि हम पहले कहचुकेहैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

मूलं—चतुर्विधस्य चान्नस्य रसस्त्रेधा विभज्यते ॥ तत्र सारतमो लिंगदेहस्य परिपोषकः ॥ ७३ ॥ सप्तधातुमयं पिण्डमेति पुष्णाति मध्यगः ॥ याति विण्मूत्ररूपेण तृतीयः सप्ततो बहिः ॥ ७४ ॥ आद्यभागं द्वयं नाड्यः प्रोक्तास्ताः सकला अपि ॥ पोषयन्ति वपुर्वायुमापादतलमस्तकम् ॥ ७५ ॥

टीका—चार विधि अन्नभोजन करनेसे तीनप्रकारका रस उत्पन्नहोताहै उसमें जो प्रथम सारभूत रसहै वह लिङ्गशरीरको पोषण करताहै और जो दूसरा रसहै वह सप्तधातुमय पिण्डको पोषण करताहै और तीसरा रस सप्त धातुके बाहर मल मूत्र रूपहै पहिले जो दोभाग रस कहाहै वही सकल नाडीरूपहैं और

पादसे लेकर मस्तकपर्यंत शरीरके वायुका पोषणक-
रते हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

मूलं-नाडीभिराभिः सर्वाभिर्वायुः सञ्चरते
यदा ॥ तदैवान्नरसो देहे साम्येनेह प्रव-
र्त्तते ॥ ७६ ॥

टीका-जब सब नाडीके साथ वायु चलताहै तब
अन्नका रस शरीरमें सम भावसे प्रवृत्त होताहै ॥ ७६॥

मूलं-चतुर्दशानां तत्रेह व्यापारे मुख्यभा-
गतः ॥ ता अनुग्रत्वहीनाश्च प्राणसञ्चार-
नाडिकाः ॥ ७७ ॥

टीका-सर्व नाडियोंमें पूर्वोक्त चौदह नाडी शरीर
के मुख्य व्यापारके करताहैं यह प्राण सञ्चार करने-
वाली चौदह नाडीमें परस्पर कोई किसीसे न्यून
अधिक नहीं है ॥ ७७ ॥

मूलं-गुदाद्व्यंगुलतश्चोर्ध्वं मेढ्रैकांगुलत-
स्त्वधः॥ एवञ्चास्ति समं कन्दं समता च-
तुरंगुलम् ॥ ७८ ॥

टीका-गुदासे दो अङ्गुल ऊपर और मेढ्र अर्थात्
लिङ्गमूलसे एक अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तारक-
न्दका प्रमाणहै ॥ ७८ ॥

मूलं-पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुदमेढ्रान्तरालगा॥तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ति कुण्डली सदा ॥ ७९ ॥ संवेष्ट्य सकला नाडीः सार्द्धत्रिकुटिलाकृतिः ॥ मुखेनिवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णाविवरे स्थिता॥८०॥

टीका-गुदा और मेढ्रके मध्यमें जो योनिहै वह पश्चिमामुखी अर्थात् पीछेको मुखहै उसी स्थानमें कन्दहै और उसी स्थानमें सर्वदा कुण्डलनीकी स्थितिहै यह कुण्डलनी सकल नाडीको घेरके साढे तीन फेरा कुटिल आकृतिसे अपने मुखमें पुच्छको लेके सुषुम्णा विवरमें स्थितहै ॥ ७९ ॥८० ॥

मूलं-सुप्तानागोपमाह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया ॥ अहिवत् सन्धिसंस्थाना वाग्देवी बीजसंज्ञिका ॥ ८१ ॥

टीका-यह कुण्डलिनी सर्पके समान निद्रिता अपने प्रभासे प्रकाशमानहै और सर्पके सदृश संधिमें स्थितहै और वाग्देवी है अर्थात् कुण्डलनीहीसे वाक्य उच्चारण होताहै और बीज संज्ञकहै अर्थात् संसारकी बीजहै ॥ ८१ ॥

मूलं-ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोर्निर्मला स्वर्ण-

भास्वरा॥सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयप्र-
सूतिका ॥ ८२ ॥

टीका—यह कुण्डलनी देवी ईश्वरकी शक्तिमें तप्त स्वर्णके समान निर्मल तेजप्रभाहै और सत्व रज तम यह तीनों गुणकी माताहै ॥ ८२ ॥

मूलं—तत्र बन्धूकपुष्पाभं कामबीजं प्रकी-
र्तितम्॥ कलहेमसमं योगे प्रयुक्ताक्षररू-
पिणम् ॥ ८३ ॥

टीका—जिस स्थानमें कुण्डलनी है उसी स्थानमें बन्धूकपुष्पके समान रक्तवर्ण कामबीजकी स्थिति कहीगई है वह कामबीज तप्तस्वर्णके समान स्वरूप-योगयुक्त द्वारा चिंतनीयहै ॥ ८३ ॥

मूलं—सुषुम्णापि च संश्लिष्टो बीजं तत्र वरं
स्थितं ॥ शरच्चंद्रनिभं तेजस्स्वयमेतत्स्फु-
रत्स्थितम्॥८४॥सूर्यकोटिप्रतीकाशं च-
न्द्रकोटिसुशीतलम् ॥एतत्त्रयं मिलित्वैव-
देवी त्रिपुरभैरवी॥बीजसंज्ञं परंतेजस्तदे-
वपरिकीर्तितम् ॥ ८५ ॥

टीका—जिस स्थानमें कुंडलिनी स्थितहै सुषुम्णा उसीस्थानमें कामबीजके साथ स्थितहै और वह बीज

शरदचन्द्रके समान प्रकाशमान तेजहै और वह आप ही कोटि सूर्यके समान प्रकाश और कोटि चंद्रके समान शीतलहै यह तीनों मिलके अर्थात् कुण्डलिनी-सुषुम्णा बीजकुण्डलिनीका नाम त्रिपुरभैरवी देवी है यह कुण्डलिनी परमतेजमानहै और इसको बीजसंज्ञाहै।८४।८५।

मूलं-क्रियाविज्ञानशक्तिभ्यां युतं यत्परि
तोभ्रमत् ॥ ८६ ॥ उत्तिष्ठद्विशतस्त्वम्भः
सूक्ष्मं शोणशिखायुतं ॥ योनिस्थं तत्परं
तेजः स्वयंभूलिंगसंज्ञितम् ॥ ८७ ॥

टीका-वह बीज क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिसे युक्त होके शरीरमें भ्रमण करताहै और कभी उर्ध्वगामी होताहै और कभी जलमें प्रवेश करताहै और सूक्ष्म प्रज्वलित अग्निके समान शिखायुत परमतेज वीर्यकी स्थिति योनिस्थानमें है और स्वयम्भू लिङ्गसंज्ञाहै ॥८६॥८७॥

मूलं--आधारपद्ममेतद्धियोनिर्यस्यास्ति
कन्दतः ॥ परिस्फुरत् वादिसान्तचतुर्वर्णं
चतुर्दलम् ॥ ८८ ॥

टीका-यह जो कहाहै इसको आधार पद्म कहतेहैं और इस पद्मके मूलमें योनिकी स्थितिहै यह पद्म परम प्रकाशमान-व-से-स-तक अर्थात् व-श-ष स-चारवर्ण और चारदल करके शोभितहै ॥ ८८ ॥

मूलं–कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भूलिङ्गसं-
गतम् ॥ द्विरण्डो यत्र सिद्धोस्ति डाकि-
नी यत्र देवता ॥ ८९॥ तत्पद्ममध्यगा यो
निस्तत्र कुण्डलिनी स्थिता॥ तस्य ऊर्ध्वे
स्फुरत्तेजः कामबीजं भ्रमन्मतम् ॥९० ॥
यः करोति सदा ध्यानं मूलाधारे विच-
क्षणः ॥ तस्य स्याद्दार्दुरी सिद्धिर्भूमि-
त्यागक्रमेण वै ॥ ९१ ॥

टीका–वह कमल कुलाभिधहै अर्थात् कुलनामहै और स्वर्णके समान कांतिहै और स्वयंभूलिङ्गसे युक्त है और उस पद्ममें द्विरण्डनामक सिद्ध और डाकिनी देवता अधिष्ठात्रीहै और गणेश देवताहैं ॥ और उस पद्मके मध्यमें योनिहै उस योनिमें कुण्डलिनीकी स्थ-तिहै और उस कुण्डलिनीके ऊपर दीप्तिमान तेजस्व-रूप कामबीज भ्रमण करताहै जो बुद्धिमान् पुरुष इस मूलाधार पद्मका सर्वदा ध्यान करते हैं उनको दार्दुरी वृत्ति सिद्ध होती है और क्रमसें भूमिको त्यागके आ-काशगमन करते हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

मूलं–वपुषः कान्तिरुत्कृष्टा जठराग्निविव-

र्धनं ॥ आरोग्यञ्च पटुत्वञ्च सर्वज्ञत्वञ्च जायते ॥ ९२ ॥

टीका–यह ध्यान करनेसे शरीरमें उत्तम कांति होती है और जठराग्नि वर्धित होताहै और शरीर आरोग्य रहताहै और पटुता और सर्वज्ञता अर्थात् सर्व वस्तुका ज्ञान उत्पन्न होताहै ॥ ९२ ॥

मूलं–भूतं भव्यं भविष्यञ्च वेत्ति सर्वं सकारणम् ॥ अश्रुतान्यपि शास्त्राणि सरहस्यं वदेद्ध्रुवम् ॥ ९३ ॥

टीका–फिर भूत भविष्य वर्तमान तीनोंकाल और सर्व वस्तुके कारणका ज्ञान होताहै और जो शास्त्र कभी श्रवण नहीं कियाहै उसको रहस्य सहित व्याख्या करनेकी शक्ति निश्चय उत्पन्न होती है ॥ ९३ ॥

मूलं–वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरम् ॥ मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य जपादेव न संशयः ॥ ९४ ॥

टीका–योगीके मुखमें सर्वदा निरंतर सरस्वती देवी नृत्य करती है और योगीकी जपमात्रसे मन्त्रादिकी सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं है ॥ ९४ ॥

मूलं–जरामरणदुःखौघान्नाशयति गुरोर्व-

चः ॥ इदं ध्यानं सदाकार्यं पवनाभ्यासिना परं ॥ ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मुच्यते सर्वाकिल्बिषात् ॥ ९५ ॥

टीका–गुरुका वचन जरा मृत्यु आदि जो दुःखका समूहहै उसको नाश करदेताहै पवनाभ्यासी साधकको यह परमध्यान सर्वदा करनेके योग्यहै ध्यान मात्रसे योगीन्द्र सर्वपापसे मुक्त होजाताहै ॥ ९५ ॥

मूलं–मूलपद्मं यदा ध्यायेत् योगी स्वयम्भुलिङ्गकम् ॥ तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ९६ ॥

टीका–योगी जब मूलाधार पद्म स्वयम्भूलिङ्गसंयुक्तका ध्यानकरे तो उसीक्षण निश्चय पापके समूहका नाश करदेगा ॥ ९६ ॥

मूलं–यं यं कामयते चित्ते तं तं फलमवाप्नुयात् ॥ निरन्तरकृताभ्यासात्तं पश्यति विमुक्तिदम् ॥९७॥ बहिरभ्यन्तरे श्रेष्ठं पूजनीयं प्रयत्नतः ॥ ततः श्रेष्ठतमं ह्येतन्नान्यदस्ति मतं मम ॥ ९८ ॥

टीका–जो साधक मूलाधार पद्मका ध्यान करतेहैं वह अपने चित्तमें जोजो वस्तुकी इच्छा करतेहैं सोसो

सर्व वस्तु उनको प्राप्त होतीहैं और सर्वदा यत्नपूर्वक यह अभ्यास करनेसे बाहर भीतर श्रेष्ठपूजनीय मुक्ति-दायी परमात्माको देखतेहैं हेपार्वती इससे श्रेष्ठतम दूसरा योग नहींहै यह हमारा मतहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

मूलं–आत्मसंस्थं शिवं त्यक्त्वा बहिःस्थं यः समर्चयेत् ॥ हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य भ्रमते जीविताशया ॥ ९९ ॥

टीका–मनुष्य शरीरस्थ शिवको त्यागके बाहरके देवताको पूजतेहैं जैसे हाथके पिंडको त्यागके जीवके रक्षार्थ अन्य पिंडके हेतु लोग भ्रमण करतेहैं ॥ ९९ ॥

मूलं–आत्मलिंगार्चनं कुर्यादनालस्यं दिने दिने ॥ तस्य स्यात्सकलासिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥१०० ॥ निरन्तरकृताभ्यासात्षण्मासे सिद्धिमाप्नुयात् ॥ तस्य वायुप्रवेशोऽपि सुषुम्णायाम्भवेद्ध्रुवम् ॥ ॥ १०१ ॥ मनोजयश्च लभते वायुबिन्दुविधारणाम् ॥ ऐहिकामुष्मिकीसिद्धिर्भवेन्नैवात्र संशयः ॥ १०२ ॥

टीका–जो आलस्यको त्यागके शरीरस्थ परमात्माका नित्य पूजन करेगा उसको सकलसिद्धि प्राप्त-

होंगी इसमें संशय नहीं है यदि इसका अभ्यास निरन्तरकरे तो छःमासमें सिद्धि प्राप्तहोगी और उसके सुषुम्णानाडीमें निश्चय वायु प्रवेश करेगा और मनको जीतलेगा और वायु और बिन्दुका धारण सिद्धहोगा और इसलोक और परलोककी सिद्धि प्राप्त होगी इसमें संशय नहींहै ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथ स्वाधिष्ठानचक्रविवरणम् ॥

मूलं–द्वितीयन्तु सरोजञ्च लिंगमूले व्यवस्थितम्॥वादिलान्तं च षड्वर्णं परिभास्वरषड्दलम्॥१०३॥स्वाधिष्ठानाभिधं तत्तु पंकजं शोणरूपकं ॥ बाणाख्यो यत्रसिद्धोऽस्ति देवी यत्रास्ति राकिणी ॥१०४॥

टीका–दूसरा पद्म जो लिङ्गमूलमें स्थितहै वह- बसे लतक- अर्थात्-ब-भ-म-य-र-ल-यह छःवर्णोंकरके युक्तहै और छः दलसे शोभितहै यह रक्तवर्ण पद्मकानाम स्वाधिष्ठानहै और इसस्थानमें बाणनामक सिद्ध और राकिणी देवी अधिष्ठात्रीहैं और ब्रह्मा देवताहैं॥१०३॥१०४॥

मूलं–यो ध्यायति सदा दिव्यं स्वाधिष्ठानारविन्दकम् ॥ तस्य कामाङ्गनाः सर्वा भजन्ते काममोहिताः ॥ १०५ ॥

टीका-जो पुरुष यह दिव्य स्वाधिष्ठानपद्मका सर्वदा ध्यान करते हैं उनको कामरूपिणी स्त्री कामसे मोहित होके भजतीहैं अर्थात् सेवा करतीहैं ॥ १०५॥

मूलं-विविधश्चाश्रुतं शास्त्रं निःशङ्को वै वदेद्ध्रुवम्॥सर्वरोगविनिर्मुक्तो लोके चरति निर्भयः॥ १०६ ॥

टीका-विविधशास्त्र जो कभी श्रवण नहीं किया हो उसकोभी इस पद्मके ध्यानके प्रभावसे निःशंक कहेगा और सर्वरोगसे मुक्तहोके आनन्दपूर्वक संसारमें विचरेगा ॥ १०६ ॥

मूलं-मरणं खाद्यते तेन स केनापि न खाद्यते ॥ तस्य स्यात्परमा सिद्धिरणिमादिगुणप्रदा ॥१०७॥ वायुः सञ्चरते देहे रसवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम्॥ आकाशपङ्कजगलत्पीयूषमपि वर्द्धते ॥ १०८॥

टीका-यह साधक मृत्युको नाश करदेताहै और वह किसीसे नष्ट नहींहोता और उस साधकको गुणदेनेवाली अणिमादि सिद्धि प्राप्त होती हैं और उसके शरीरमें वायु संचार करताहै अर्थात् सुषुम्णामें प्रवेश करताहै और निश्चयरसकी वृद्धि होतीहै और सह-

स्त्रदलकमलसे जो अमृत स्त्रवताहै उसकी वृद्धि होती है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ मणिपूरचक्रविवरणम् ॥

मूलं–तृतीयं पङ्कजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञकं॥दशारंडादिफान्तार्णं शोभितं हेमवर्णकम् ॥ १०९ ॥ रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमङ्गलदायकः ॥ तत्रस्था लाकिनीनाम्नी देवी परमधार्मिका ॥ ११० ॥

टीका–मणिपूरनामक तीसरापद्म जो नाभिस्थलमेंहै वह हेमवर्ण दशदलकरके शोभितहै और-ड-से फ-तक अर्थात्-ड-ढ-ण-त-थ-द-ध-न-प-फ-यह दशवर्णसे युक्तहै और उस स्थानमें सर्वमंगलदाता रुद्रनामक सिद्ध और लाकिनी देवी अधिष्ठात्री और विष्णुदेवताहैं ॥ १०९ ॥ ११० ॥

मूलं तास्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके ॥ तस्य पातालसिद्धिः स्यान्निरन्तरसुखावहा ॥१११॥ ईप्सितञ्च भवेल्लोके दुःखरोगविनाशनम् ॥ कालस्य वञ्चनञ्चापि परदेहप्रवेशनम् ॥ ११२ ॥

टीका–जो साधक इस मणिपूरचक्रको सर्वदा ध्या-

नकरतेहैं सो सर्वसिद्धिदात्री जो पातालसिद्धि है उसको लाभ करतेहैं और उनका दुःख रोगविनाश होके सकल मनोरथ सिद्ध होताहै और कालको निरादर कर देतेहैं और परदेहमें प्रवेश करनेकी शक्ति उत्पन्न होतीहै ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मूलं–जाम्बूनदादिकरणं सिद्धानां दर्शनं भवेत् ॥ ओषधीदर्शनञ्चापि निधीनां दर्शनं भवेत् ॥ ११३ ॥

टीका–यह साधककों स्वर्णआदि रचना करनेकी शक्ति होतीहै और देवतोंका दर्शन और निधि और ओषधीका दर्शन होताहै ॥ ११३ ॥

मूलं–हृदयेऽनाहतंनाम चतुर्थं पङ्कजं भवेत् ॥११४॥ कादिठान्तार्णसंस्थानं द्वादशारसमन्वितम् ॥ अतिशोणं वायुबीजं प्रसादस्थानमीरितम् ॥ ११५ ॥

टीका–हृदयस्थानमें जो अनाहतनामक चतुर्थपद्महै वह-क-से-ठ-तक अर्थात् क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठ-यह बारह वर्ण और बारहदलसे युक्तहै और अति उज्ज्वल रक्तवर्णसे शोभायमानहै और

वह प्रसन्नस्थान वायुका बीज अर्थात् प्राणवायुका आधारहै ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

मूलं-पद्मस्थं तत्परं तेजो बाणलिंगं प्रकीर्तितम्॥ यस्य स्मरणमात्रेण दृष्टादृष्टफलं लभेत् ॥ ११६ ॥

टीका-उस हृदयकमलमें जो परमतेजहै उसीको बाणलिङ्ग कहतेहैं जिसके ध्यानमात्रसे साधक इस लोक और परलोकका उत्तम फल आनंदपूर्वक लाभ करतेहैं ॥ ११६ ॥

मूलं-सिद्धः पिनाकी यत्रास्ते काकिनी यत्र देवता ॥ एतस्मिन् सततं ध्यानं हृत्पाथोजे करोति यः ॥ क्षुभ्यन्ते तस्य कान्ता वै कामार्ता दिव्ययोषितः ॥११७॥

टीका-जिस पद्ममें पिनाकी सिद्ध और काकिनी देवी अधिष्ठात्री हैं उस हृदयस्थ पद्ममें जो साधक सर्वदा ध्यान करताहै उसके समीप कामार्ता सुन्दर स्त्री अप्सरा आदि मोहित होजाती हैं ॥ ११७ ॥

मूलं-ज्ञानञ्चाप्रतिमंतस्य त्रिकालविषयम्भवेत् ॥ दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः स्वेच्छया खगतां व्रजेत् ॥ ११८ ॥

टीका–उस साधकको अपूर्वज्ञान उत्पन्न होताहै और त्रिकाल दर्शी होताहै और दूरशब्द श्रवण करने और दूरकी सूक्ष्मवस्तु देखनेकी शक्ति उत्पन्न होती है और स्वेच्छासे आकाशमें गमन करताहै ॥ ११८ ॥

मूलं–सिद्धानां दर्शनश्चापि योगिनीदर्शनं तथा ॥ भवेत् खेचरसिद्धिश्च खेचराणां जयन्तथा॥११९॥यो ध्यायति परं नित्यं बाणलिंगं द्वितीयकम् ॥ खेचरीभूचरी सिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः ॥ १२० ॥

टीका–जो साधक यह दूसरे परमबाणलिङ्गका नित्य ध्यान करताहै उसकों देवता और योगनीका दर्शन होताहै और आकाशमें गमन करनेकी शक्ति हो जाती है और आकाशगामीसे जय प्राप्त होतीहै और खेचरी भूचरी सिद्ध होती है इसमें संशय नहीं है॥११९॥१२०॥

मूलं–एतद्ध्यानस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ॥ ब्रह्माद्याः सकला देवा गोपायन्ति परन्त्विदम् ॥ १२१ ॥

टीका–हे देवी इस अनाहत पद्मके ध्यानके माहात्म्य को कोई नहीं कहसकता और इस ध्यानको ब्रह्मा आदि सकल देवता गोप्य रखतेहैं ॥ १२१ ॥

अथ विशुद्धचक्रविवरणम् ॥

मूलं—कण्ठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नाम-पञ्चमम् ॥१२२॥ सुहेमाभं स्वरोपेतं षोड-शस्वरसंयुतम् ॥ छगलाण्डोऽस्ति सिद्धो-त्रशाकिनी चाधिदेवता ॥ १२३ ॥

टीका—कंठस्थानमें जो पांचवां विशुद्धनामक कमलहै वह स्वर्णके समान कांतिसे शोभितहै और सोलह स्वर अर्थात् अ-आ-इ-ई-उ-ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ-ए-ऐ-ओ-औ-अं-अःसे युक्तहै और छगलांड सिद्ध और शाकिनीदेवी अधिष्ठात्री और जीवात्मा देवता इसस्थान में सदा विराजमान है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

मूलं—ध्यानं करोति यो नित्यं सयोगीश्वर-पण्डितः ॥ किन्त्वस्य योगिनोऽन्यत्र वि-शुद्धाख्ये सरोरुहे ॥ चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्या निधेरिव ॥ १२४॥

टीका—जो पुरुष इस विशुद्धपद्मका नित्य ध्यान करतेहैं सो योगीश्वर पंडितहैं और इस विशुद्धपद्ममें उस पुरुषको चारोवेद रहस्यसहित समुद्रके रत्नवत् प्रकाश होताहै ॥ १२४ ॥

मूलं—इहस्थाने स्थितो योगी यदा क्रोध-

वशो भवेत्॥तदा समस्तं त्रैलोक्यं कम्पते नात्र संशयः॥ १२५॥

टीका-यह विशुद्धपद्ममें जब योगी मन और प्राणको स्थित करके यदि क्रोध करे तो अवश्य चराचर त्रैलोक्य कम्पायमान होजाय इसमें सन्देह नहीं॥१२५॥

मूलं-इहस्थाने मनो यस्य दैवात् याति लयं यदा॥ तदा बाह्यं परित्यज्य स्वान्तरे रमते ध्रुवम्॥ १२६॥

टीका-यह कमलमें साधकका मन दैवात् जब लय होताहै तब सकलबाह्य विषयको त्यागके योगीका मन और प्राण शरीरके अंतरहीमें निश्चय रमण करताहै॥ १२६॥

मूलं-तस्य न क्षतिमायाति स्वशरीरस्य शक्तितः॥ संवत्सरसहस्रेऽपि वज्रातिकठिनस्यवै॥ १२७॥यदा त्यजति तद्ध्यानं योगींद्रोऽवनिमण्डले॥तदा वर्षसहस्राणि मन्यते तत्क्षणंकृती॥ १२८॥

टीका-उस योगीका शरीर वज्रसेभी कठोर होजाताहै और उसको स्वशरीरकी शक्तिसे किसीप्रकारकी हानि नहीं होतीहै और सहस्रवर्ष समाधिके पीछे जब

उस ध्यानको छोडके योगीकी चित्तवृत्ति संसारमें आवेगी तब उस सहस्रवर्षको योगी एकक्षण व्यतीत भया मानेगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

अथ आज्ञाचक्रविवरणम् ॥

मूलं–आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकं॥शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्रहाकिनी ॥ १२९ ॥

टीका–भ्रूके मध्यमें जो आज्ञापद्महै उसमे हं-क्षं-दो बीजहैं और सुंदर श्वेतवर्ण दो पत्रहैं और उसस्थानमें महाकाल सिद्धहै और हाकिनीदेवी अधिष्ठात्री और परमात्मा देवताहै ॥ १२९ ॥

मूलं–शरच्चंद्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृंभितं॥ पुमान्न परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति ॥ १३० ॥ तत्र देवः परन्तेजः सर्वतन्त्रेषु मन्त्रिणः॥चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥ १३१ ॥

टीका–उस आज्ञापद्मके मध्यमें शरदच्चंद्रके समान परमतेज चंद्रबीज अर्थात्. ठं. बीज विराजमानहै इसके ज्ञान होनेसे परमहंस पुरुषको कभी कष्ट नहीं होता यह परमतेजका प्रकाश सर्वतंत्रोंकरके गो-

पितहै इसके चिंतनमात्रसे अवश्य परम सिद्धिलाभ होतीहै ॥ १३० ॥ १३१ ॥

मूलं–तुरीयं त्रितयं लिंगं तदाहं मुक्तिदायकः ॥ ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मत्समो भवति ध्रुवम् ॥ १३२ ॥

टीका–हेपार्वती उसस्थानमें तुरीया तृतीयलिंग हमीं मुक्तिके दाताहैं इसके ध्यानमात्रसे योगीन्द्र निश्चय हमारे तुल्य होजायगा ॥ १३२ ॥

मूलं–इडा हि पिंगला ख्याता वरणासीति होच्यते ॥ वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोत्र भाषितः ॥ १३३ ॥

टीका–यह शरीरमें जो दो इडा और पिंगला नाडीहैं उनको वरणा और असी कहतेहैं यह वरणा और असीके मध्यमें स्वयं विश्वनाथजी विराजमानहैं तात्पर्य यहहै कि यह इडा और पिंगलाके मध्यमें जो स्थानहै उसीको शिवजीनें वाराणसी कहाहै ॥ १३३ ॥

मूलं–एतत् क्षेत्रस्य माहात्म्यमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ शास्त्रेषु बहुधा प्रोक्तं परं तत्त्वं सुभाषितम् ॥ १३४ ॥

टीका–यह वाराणसी क्षेत्रके माहात्म्यको तत्वद-

र्षी ऋषिलोगोंने अनेक शास्त्रोंमें बहुत प्रकारसे परम-
तत्व कहाहै ॥ १३४ ॥

मूलं—सुषुम्णा मेरुणा याता ब्रह्मरन्ध्रं य-
तोऽस्ति वै ॥ ततश्चैषा परावृत्या तदाज्ञा-
पद्मदक्षिणे ॥ १३५ ॥ वामनासापुटं या-
ति गंगेति परिगीयते ॥ १३६ ॥

टीका—सुषुम्णानाडी मेरुदंडद्वारा जहां ब्रह्मरन्ध्रहै
उस स्थानमें गईहै और इडानाडी सुषुम्णाके अपर
आवृतसे आज्ञाचक्रके दक्षिणभाग होके वामनासापु-
टको गईहै इसको गङ्गा कहतेहैं ॥१३५॥ १३६ ॥

मूलं—ब्रह्मरन्ध्रेहि यत् पद्मं सहस्रारं व्यव-
स्थितं ॥ तत्र कन्देहि या योनिस्तस्यां च-
न्द्रो व्यवस्थितः ॥ १३७ ॥ त्रिकोणाकार-
तस्तस्याः सुधाक्षरति सन्ततम् ॥ इडाया-
ममृतं तत्र समं स्रवति चन्द्रमाः ॥ १३८ ॥
अमृतं वहति द्वारा धारारूपं निरन्तरम् ॥
वामनासापुटं याति गंगेत्युक्ता हि यो-
गिभिः ॥ १३९ ॥

टीका—ब्रह्मरन्ध्रमें जो सहस्रदल पद्महै उस पद्मके
कन्दमें योनिहै उस योनिमें चन्द्रमा विराजमानहैं

और वही त्रिकोणाकार योनिसे चन्द्र विगलित अमृत सर्वदा स्रवताहै सो अमृत चंद्रमासे इडानाडीद्वारा समभावसे निरन्तर धारारूप गमन करताहै और उस इडानाडीकी गति वामनासापुटमेंहै इसहेतुसे योगीलोग इस नाडीको गंगा कहतेहैं॥१३७॥१३८॥१३९॥

मूलं–आज्ञापङ्कजदक्षांसाद्वामनासापुटंगता ॥ उदग्वहेति तत्रेडा गंगेति समुदाहृता ॥ १४० ॥

टीका–वह इडानाडी आज्ञापद्मके दक्षिण भागसे वामनासापुटको गमन करतीहै इसीको उदग्वाहिनी गंगा कहतेहैं ॥ १४० ॥

मूलं–ततो द्वयहिमस्थाने वाराणस्यान्तु चिन्तयेत् ॥ तदाकारापिंगलापि तदाज्ञाकमलोत्तरे ॥ दक्षनासापुटे याति प्रोक्तास्माभिरसीति वै ॥ १४१ ॥

टीका–यह इडा और पिङ्गलाके मध्य स्थानको वाराणसी चिन्तनाकरे और इडानाडीके समान पिङ्गलाभी उस आज्ञाकमलके वामभागसे दक्ष नासापुटको गईहै इसहेतुसे हेदेवी इस पिङ्गलाको हमने असी कहाहै ॥ १४१ ॥

मूलं—मूलाधारेहि यत् पद्मं चतुष्पत्रं व्यवस्थितं ॥ तत्र कन्देस्तियायोनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थितः ॥ १४२ ॥

टीका—जोमूलाधारपद्म चार दलसे युक्तहै उस कमल के कन्दमें जो योनिहै इस योनिमें सूर्य स्थितहैं ॥ १४२ ॥

मूलं—तत् सूर्यमण्डलाद्वारं विषं क्षरति सन्ततम् ॥ १४३ ॥ पिंगलायां विषं तत्र समर्पयति तापनः ॥ विषं तत्र वहन्ती या धारारूपं निरन्तरम् ॥ दक्षनासापुटे याति कल्पितेयन्तु पूर्ववत् ॥ १४४ ॥

टीका—वही सूर्यमण्डलसे निरन्तर विष स्रवताहै और पिङ्गलाद्वारा गमन करताहै और वह विष सर्वदा धारारूप पिङ्गलानाडीसे प्रवाहित रहताहै और यह पिङ्गलानाडी दक्षिणनासापुटमें गईहै ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

मूलं—आज्ञापङ्कजवामास्याद्दक्षनासापुटं गता ॥ उदग्वहापिंगलापि पुरासीति प्रकीर्तिता ॥ १४५ ॥

टीका—यह नाडी आज्ञाकमलके वामभागसे दक्षिण नासिकापुटको गई है इस हेतुसे यह पिङ्गलानाडीको असी कहते हैं ॥ १४५ ॥

मूलं-आज्ञापद्ममिदं प्रोक्तं यत्र देवो महेश्वरः ॥ १४६ ॥ पीठत्रयं ततश्चोर्ध्वं निरुक्तं योगचिन्तकैः ॥ तद्बिन्दुनादशक्त्याख्यं भालपद्मे व्यवस्थितम् ॥ १४७ ॥

टीका-इस स्थानमें महेश्वर देवताहैं इसको आज्ञापद्म कहते हैं और योगचिन्तक लोग कहते हैं कि इस पद्मके ऊपर पीठत्रयकी स्थितिहै अर्थात् नादबिंदु, शक्ति, यह तीनों इस भालपद्ममें विराजमान हैं ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

मूलं-यः करोति सदाध्यानमाज्ञापद्मस्य गोपितम् ॥ पूर्वजन्मकृतं कर्म विनश्येदविरोधतः ॥ ४८ ॥

टीका-जो पुरुष सर्वदा गोपित करके इस आज्ञाकमलका ध्यान करतेहैं उनका पूर्वजन्मकृत कर्मफल सकल निर्विघ्न नाश होजाताहै ॥ १४८ ॥

मूलं-इह स्थितः सदा योगी ध्यानं कुर्यान्निरन्तरं ॥ तदा करोति प्रतिमां प्रतिजापमनर्थवत् ॥ १४९ ॥

टीका-जब योगी यह ध्यान सर्वदा निरन्तर करे

तो उसका प्रतिमा पूजन करना वा जप करना सर्वथा अनर्थवत्‌है ॥ १४९ ॥

मूलं-यक्षराक्षसगन्धर्वा अप्सरोगणाकिन्नराः ॥ सेवन्ते चरणौ तस्य सर्वे तस्य वशानुगाः ॥ १५० ॥

टीका-यक्ष और राक्षस और गन्धर्व और अप्सरा और किन्नर आदि सब इस ध्यानयुक्त योगीके वशमें हो जातेहैं और उसके चरणकी सेवा करते हैं॥१५०॥

मूलं-करोति रसनां योगी प्रविष्टां विपरीतगाम्॥ लम्बिकोर्ध्वेषु गर्तेषु धृत्वा ध्यानं भयापहम् ॥ १५१ ॥ अस्मिन् स्थाने मनो यस्य क्षणार्धं वर्ततेऽचलम्॥तस्य सर्वाणि पापानि संक्षयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ १५२ ॥

टीका-जो योगी विपरीतगामी जिह्वाको ऊपर तालुमूलमें प्रवेश करके यह भयनाशक आज्ञाकमल का ध्यान अर्धक्षणभी मन अचल स्थिरता पूर्वक करते है उनका सकल पातक उसीक्षण नाश होजाताहै॥ १५१॥१५२॥

मूल-यानि यानिहि प्रोक्तानि पंचपद्मे फ-

लानि वै ॥ तानि सर्वाणि सुतरामेतज्ज्ञा-
नाद्भवन्ति हि ॥ १५३ ॥

टीका–पंच पद्मका जो जो फल पहिले कहाहै सो सबका समस्त फल आपही इस आज्ञाकमलके ध्यान-सेही प्राप्त होजायगा ॥ १५३ ॥

मूलं–यः करोति सदाभ्यासमाज्ञापद्मे वि-
चक्षणः ॥ वासनाया महाबन्धं तिरस्कृ-
त्य प्रमोदते ॥ १५४ ॥

टीका–जो बुद्धिमान् सर्वदा मन स्थिर करके यह आज्ञापद्मका अभ्यास करते हैं वह वासनारूपी महा-बन्धको निरादर करके आनन्द लाभ करते हैं॥ १५४॥

मूलं–प्राणप्रयाणसमये तत्पद्मं यः स्मर-
न्सुधीः ॥ त्यजेत्प्राणं स धर्मात्मा परमा-
त्मनि लीयते ॥ १५५ ॥

टीका–जो बुद्धिमान् मृत्युके समय उस आज्ञापद्म का ध्यान करेगा सो धर्मात्मा प्राणको त्यागके परमा-त्मामें लय होजायगा ॥ १५५ ॥

मूलं–तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् जाग्रत् यो-
ध्यानं कुरुते नरः ॥ पापकर्म विकुर्वाणो
नहि मज्जति किल्बिषे ॥ १५६ ॥

टीका-जो मनुष्य बैठे चलते जाग्रतमें स्वप्नमें सर्वदा इस कमलका ध्यान करते हैं सो यदि पापकर्म रतभी हों तोभी मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ १५६ ॥

मूलं-राजयोगाधिकारी स्यादेतच्चिन्तनतो ध्रुवम् ॥ योगी बन्धाद्विनिर्मुक्तः स्वीयया प्रभया स्वयम् ॥ १५७॥ द्विदलध्यानमाहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ॥ ब्रह्मादिदेवताश्चैव किञ्चिन्मत्तो विदन्ति ते॥१५८॥

टीका-जो इस कमलका ध्यान करताहै वह निश्चय राजयोगका अधिकारी है योगी स्वयं अपने प्रभासे सकलबन्धसे मुक्त होजाताहै हे देवी इस द्विदल पद्मके माहात्म्यको कोई कहनेमें समर्थ नहीं है ब्रह्मा आदि देवता इस पद्मके माहात्म्यको किञ्चित् हमारे द्वारा जानते हैं ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

मूलं-अतऊर्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम् ॥ अस्ति यत्र सुषुम्णायामूलं सविवरं स्थितम् ॥ १५९ ॥

टीका-इस आज्ञापद्मके ऊपर तालुमूलमें सहस्रदल कमल शोभायमानहै उसी स्थानमें ब्रह्मरन्ध्रके विवरमूलमें सुषुम्णा स्थितहै ॥ १५९ ॥

मूलं-तालुमूले सुषुम्णास्य अधोवक्रा प्रव-
र्त्तते ॥ मूलाधारेण योन्यस्ताः सर्वनाड्यः
समाश्रिताः ॥ ता बीजभूतास्तत्त्वस्य ब्र-
ह्ममार्गप्रदायिकाः ॥ १६० ॥

टीका-वह सुषुम्णाका मुख तालुमूल अर्थात् ब्र-
ह्मरन्ध्रमें नीचेको वर्तमानहै और मूलाधारसे योनि
पर्यंत जो सकल नाडीहैं वह इस तत्वज्ञानबीजस्वरूप
ब्रह्ममार्गकी दाता सुषुम्णाके अधोवदनके अवलम्बसे
स्थितहैं ॥ १६० ॥

मूलं-तालुस्थाने च यत्पद्मं सहस्रारं पुरो-
दितम् ॥ तत्कन्दे योनिरेकास्ति पश्चिमा-
भिमुखी मता ॥ १६१ ॥ तस्य मध्ये सुषु-
म्णाया मूलं सविवरं स्थितम् ॥ ब्रह्मरन्ध्रं
तदेवोक्तमामूलाधारपङ्कजम् ॥ १६२ ॥

टीका-तालुस्थानमें जो सहस्र दलकमल कहाग-
याहै उसके कन्दमें एक योनि पश्चिमाभिमुखीहै अर्थात्
पीछेको मुखहै उस योनिके मध्यमें जो मूलविवरहै उसमें
सुषुम्णा ज्ञाननाडी स्थितहै हेदेवी इसको ब्रह्मरन्ध्र और
इसीको मूलाधारपद्मभी कहतेहैं ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

मूलं-तत्रांतरन्ध्रेचिच्छक्तिः सुषुम्णा कु-

ण्डली सदा ॥ १६३ ॥ सुषुम्णायां स्थिता-नाडी चित्रास्यान्मम वल्लभे ॥ तस्यां मम मते कार्या ब्रह्मरन्ध्रादिकल्पना ॥१६४॥

टीका-यह सुषुम्णानाडीके रन्ध्रमें कुण्डलनी शक्ति सर्वदा विराजमानहै वह सुषुम्णा अन्तरगताशक्तिको चित्रानाडी कहतेहैं हेप्रिये पार्वती हमारे मतमें इसी चित्रासें ब्रह्मरन्ध्र आदि कलपना भईहै॥१६३॥१६४॥

मूलं-यस्याः स्मरणमात्रेण ब्रह्मज्ञत्वं प्रजायते ॥ पापक्षयश्च भवति न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ १६५ ॥

टीका-यह चित्रानाडीके ध्यानमात्रसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्नहोताहै और पाप क्षय होजाताहै और फिर संसाररूपी बन्धमें योगी नहीं पडता अर्थात् मोक्ष होजाताहै ॥ १६५ ॥

मूलं-प्रवेशितं चलाङ्गुष्ठं मुखे स्वस्य निवेशयेत्॥ तेनात्र न वहत्येव देहचारी समीरणः ॥ १६६ ॥

टीका-दक्षिण हाथके अङ्गुष्ठको मुखमें प्रवेश करके मुखको बन्द करलेनेसे देहचारी जो प्राणवायुहै वह निश्चय स्थिर होजाताहै ॥ १६६ ॥

मूलं–तेन संसारचक्रेस्मिन्न भ्रमन्ते च सर्वदा॥ तदर्थं ये प्रवर्तन्ते योगिनः प्राणधारणे ॥१६७॥ ततएवाखिलानाडी निरुद्धाचाष्टवेष्टनम्॥इयं कुण्डलिनी शक्तीरन्ध्रं त्यजति नान्यथा ॥ १६८ ॥

टीका–यह प्राणवायुके स्थिर होजानेसे इस संसार चक्रमें सर्वदा भ्रमण करना छूटजाताहै अर्थात् मोक्ष होजाताहै इसहेतुसे योगी प्राणवायुके धारण करनेमें प्रवृत्त होतेहैं और इसधारणसे सकलनाडी जो मल और काम क्रोधादि आठप्रकारसे बन्धनमें हैं वह खुल जातीहैं तब यह कुण्डलनीशक्ति ब्रह्मरन्ध्रको निश्चय त्याग देतीहै इसके त्यागदेनेसे जीव ब्रह्मका सम्बन्ध होजाताहै ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

मूलं–यदा पूर्णासु नाडीषु सन्निरुद्धानिलास्तदा ॥ बन्धत्यागेन कुण्डल्या मुखं रन्ध्राद्बहिर्भवेत्॥ सुषुम्णायां सदैवायं वहेत्प्राणसमीरणः ॥ १६९ ॥

टीका–जब वायु निरोधहोके सकल नाडीमें पूर्ण हो जायगा तब कुण्डलनी अपने बन्धको त्यागके ब्रह्म रन्ध्रके मुखको त्यागदेगी तब प्राणवायुके

प्रवाह सदैव सुषुम्णामें होजायगा ॥ १६९ ॥

मूलं–मूलपद्मास्थितायोनिर्वामदक्षिणकोणतः ॥ इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णा योनिमध्यगा ॥ १७० ॥ ब्रह्मरन्ध्रन्तु तत्रैव सुषुम्णा धारमण्डले ॥ यो जानाति स मुक्तः स्यात्कर्मबन्धाद्विचक्षणः ॥ १७१ ॥

टीका–मूलाधारपद्मस्थित जो योनिहै उस योनिके वाम दक्षिण भागमें इडा और पिंगला नाडी स्थित है और दोनो नाडीके बीचमें अर्थात् योनिके मध्यमें सुषुम्णा की स्थिति है उसी सुषुम्णाके आधारमंडलमें अर्थात् उसके मध्यमें ब्रह्मरन्ध्र है जो इसको जानताहै सो बुद्धिमान् कर्मबन्धसे मुक्तहै ॥ १७० ॥ १७१ ॥

मूलं–ब्रह्मरन्ध्रमुखे तासां संगमः स्यादसंशयः ॥ तस्मिन्स्नाने स्नातकानां मुक्तिः स्यादविरोधतः ॥१७२॥

टीका–ब्रह्मरंध्रके मुखमें इन तीनों नाडीका निश्चय सम्बन्धहै इसमें स्नान करनेसे ज्ञानीलोगोंको मुक्ति लाभहोगी ॥ १७२ ॥

मूलं–गंगायमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती ॥ तासान्तु संगमे स्नात्वा धन्यो याति परां गतिम् ॥ १७३ ॥

टीका–गंगा यमुनाके मध्यमें सरस्वतीका प्रवाह है यह त्रिवेणी संगममें स्नान करनेसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ १७३ ॥

मूलं–इडा गंगा पुरा प्रोक्ता पिंगलाचार्कपुत्रिका ॥ मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां संगोऽतिदुर्लभः ॥ १७४ ॥

टीका–इडा गंगाहै और पिंगला यमुनाहै और मध्यमें सुषुम्णा सरस्वती है यह त्रिवेणी संगम कहा गयाहै इसका स्नान अति दुर्लभहै ॥ १७४ ॥

मूलं–सितासिते संगमे यो मनसा स्नानमाचरेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्मसनातनम् ॥ १७५ ॥

टीका–यह इडा और पिंगलाके संगममें मानसिक स्नान करनेसे साधक सर्व पापसे मुक्त होके सनातन ब्रह्ममें लय होजाताहै ॥ १७५ ॥

मूलं–त्रिवेण्यां संगमे यो वै पितृकर्म समाचरेत् ॥ तारयित्वा पितॄन्सर्वान्स याति परमां गतिम् ॥ १७६ ॥

टीका–जो पुरुष इस त्रिवेणी संगममें पितृकर्मका

अनुष्ठान करतेहैं वह सर्व पितृकुलको तारके परम गतिको लाभ करते हैं ॥ १७६ ॥

मूलं-नित्यं नैमित्तिकं काम्यं प्रत्यहं यः समाचरेत्॥मनसा चिन्तयित्वा तु सोऽक्षयं फलमाप्नुयात् ॥ १७७ ॥

टीका-उसी संगमस्थानमें जो साधक नित्य और नैमित्तिक और काम्य कर्मका अनुष्ठान सर्वदा मनसे चिन्तनपूर्वक करते हैं सो अक्षय फललाभ करतेहै १७७

मूलं-सकृद्यः कुरुते स्नानं स्वर्गे सौख्यं भुनक्ति सः॥ दग्ध्वा पापानशेषान्वै योगी शुद्धमतिः स्वयम् ॥१७८॥अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा ॥ स्नानाचरणमात्रेण पूतो भवति नान्यथा ॥ १७९ ॥

टीका-जो पवित्रमति योगी एकवार इस संगममें स्नान करते हैं वह सर्व पापको दग्धकरके स्वर्गका दिव्य भोग भोगते हैं और यह साधक पवित्र हो वा अपवित्र हो वा किसी अवस्थामें हो यह संगमके ध्यानरूपी स्नानमात्रसे निश्चय पवित्र होजायगा ॥१७८॥१७९॥

मूलं-मृत्युकाले प्लुतं देहं त्रिवेण्याः सलिले

यदा ॥ विचिन्त्य यस्त्यजेत्प्राणान्स तदा मोक्षमाप्नुयात् ॥ १८० ॥

टीका—मृत्युके समयमें साधक जो यह चिंतन करे कि हमारा शरीर त्रिवेणीके सलिलमें मग्नहै तो उसी क्षण प्राणको त्यागके मोक्षगतिको प्राप्तहोगा ॥ १८० ॥

मूलं—नातः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ गोप्तव्यं तत्प्रयत्नेन न व्याख्येयं कदाचन ॥ १८१ ॥

टीका—इस तीर्थसे परे त्रिभुवनमें दूसरा गुप्त तीर्थ नहीं है इसको यत्नसे गोपित रखना उचितहै यह कदापि प्रकाश करनेके योग्य नहीं हैं ॥ १८१ ॥

मूलं—ब्रह्मरन्ध्रे मनोदत्त्वा क्षणार्धं यदि तिष्ठति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सयाति परमां गतिम् ॥ १८२ ॥

टीका—ब्रह्मरन्ध्रमें मनदेकरके यदि क्षणार्धभी स्थिर रक्खे तो सर्व पापसे मुक्तहोके साधक परम गतिको अर्थात् मोक्षको प्राप्त होजाय ॥ १८२ ॥

मूलं—अस्मिन् लीनं मनो यस्य सयोगीमयि लीयते ॥ अणिमादिगुणान् भुक्त्वा स्वेच्छया पुरुषोत्तमः ॥ १८३ ॥

टीका—हे पार्वती इस ब्रह्मरन्ध्रमें जिसका मन लीन होय सो पुरुषोत्तमयोगी अणिमादि गुणोंको भोगके इच्छापूर्वक हमारेमें लय होजायगा ॥ १८३ ॥

मूलं—एतद्रन्ध्रध्यानमात्रेण मर्त्यः संसारेऽस्मिन् वल्लभो मे भवेत्सः ॥ पापान् जित्वा मुक्तिमार्गाधिकारी ज्ञानं दत्त्वा तारयत्यद्भुतं वै ॥ १८४ ॥

टीका—हे देवी इस ब्रह्मरन्ध्रके ध्यानमात्रसे यह संसारमें प्राणी हमको प्रिय होजाताहै और पापराशिको जीतके यह साधक मुक्तिमार्गका अधिकारी हो जाता है और अनेक मनुष्योंको ज्ञान उपदेश करके संसारसे परित्राण करदेताहै ॥ १८४ ॥

मूलं—चतुर्मुखादित्रिदशैरगम्यं योगिवल्लभम् ॥ प्रयत्नेन सुगोप्यं तद्ब्रह्मरन्ध्रं मयोदितम् ॥ १८५ ॥

टीका—हे देवी यह ब्रह्मरन्धका ध्यान जो हमनें कहा है इसको यत्न करके गोपित रखना उचित है यह ज्ञान योगीलोगोंको अति प्रियहै इसका मार्ग ब्रह्मा आदि देवताकोभी अगम्यहै ॥ १८५ ॥

मूलं—पुरा मयोक्ता या योनिः सहस्रारे स-

रोरुहे ॥ तस्याऽधो वर्तते चन्द्रस्तद्ध्यानं क्रियते बुधैः ॥ १८६ ॥

टीका—हे देवी पहिले जो सहस्रदलकमलके मध्यमें योनिमण्डल हमने कहाहै उस योनिके अधोभागमें चन्द्रमा स्थितहैं यह चन्द्रमण्डलका बुद्धिमान् लोग सर्वदा ध्यान करतेहैं ॥ १८६ ॥

मूलं—यस्य स्मरणमात्रेण योगीन्द्रोऽवनि-मण्डले ॥ पूज्यो भवति देवानां सिद्धानां सम्मतो भवेत् ॥ १८७ ॥

टीका—इस चन्द्रमण्डलके ध्यानमात्रसे योगीन्द्र संसारमें पूजनीय होजाताहै और देवता और सिद्ध-लोगोंके तुल्य होजाताहै ॥ १८७ ॥

मूलं—शिरः कपालविवरे ध्यायेद्दुग्धमहो-दधिम् ॥ तत्र स्थित्वा सहस्रारे पद्मे चन्द्रं विचिन्तयेत् ॥ १८८ ॥

टीका—शिरस्थित जो कपालविवरहै उसमें क्षीर समुद्रका ध्यानकरे उसी स्थानमें स्थितिपूर्वक सहस्र दलकमलमें चन्द्रमाका चिन्तनकरे ॥ १८८ ॥

मूलं—शिरः कपालविवरे द्विरष्टकलयायु-तः ॥ पीयूषभानुहंसाख्यं भावयेत्तं निरं-

जनम् ॥ १८९ ॥ निरन्तरकृताभ्यासात्त्रि-
दिने पश्यति ध्रुवम् ॥ दृष्टिमात्रेण पापौघं
दहत्येव स साधकः ॥ १९० ॥

टीका—वह शिरस्थितकपालविवरमें सोलहकला संयु-
क्त अमृतकीर्णसेयुक्त हंससंज्ञक निरंजनका चिन्तनकरे
निरन्तर तीनदिन यह अभ्यास करनेसे निरञ्जनका सा-
क्षात् साधकको अवश्य प्रकाशहोगा सो साधक दृष्टिमा-
त्रसे सर्वपातकको दहनकरडालेगा ॥ १८९ ॥ १९० ॥

मूलं—अनागतञ्च स्फुरति चित्तशुद्धिर्भवे-
त्खलु ॥ सद्यः कृत्वापि दहति महापात-
कपञ्चकम् ॥ १९१ ॥

टीका—यह ध्यान करनेसे अनागत विषयकी स्फू-
र्ति होगी अर्थात् जो विषय कभी उत्पन्न नहीं भयाहै
उसकी स्फूर्तिहोगी और चित्तकी शुद्धिहोगी और सा-
धक ध्यानमात्रसे उसी क्षण पञ्चमहापातक दहन कर-
डालेगा ॥ १९१ ॥

मूलं—आनुकूल्यं ग्रहा यान्ति सर्वे नश्य-
न्त्युपद्रवाः ॥ उपसर्गाः शमं यान्ति युद्धे
जयमवाप्नुयात् ॥ १९२ ॥ खेचरीभूचरी
सिद्धिर्भवेच्छीरेन्दुदर्शनात् ॥ ध्यानादे-

वभवेत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा॥ १९३॥ सन्तताभ्यासयोगेन सिद्धो भवति मानवः॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ योगशास्त्रं च परमं योगिनां सिद्धिदायकम् ॥ १९४॥

टीका–शिरस्थचन्द्रमाका ध्यान करनेसे सर्व ग्रह अनुकूल होजातेहैं और समस्त उपद्रवका नाश होजाताहै और उपसर्ग प्रशमित होतेहैं और युद्धमें जय लाभ होताहैं और खेचरी भूचरीकी सिद्धि प्राप्त होतीहै इसमें सन्देह नहींहै और निरन्तर यह योग अभ्यास करनेसे अवश्यसाधक सिद्ध होजाताहै हेपार्वती हम सत्य सत्य वारम्वार कहतहै कि हमारे तुल्य होजायगा इसमें सन्देह नहींहै यह परमयोग योगी लोगोंके सिद्धिकादाताहै ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

अथ राजयोगकथनम् ॥

मूलं–अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम् ॥ ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम् ॥१९५॥ कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्रतिष्ठति॥अकुलाख्योऽविनाशीच क्षयवृद्धिविवर्जितः॥ १९६ ॥

टीका-तालुके ऊपरभागमें दिव्य सहस्रदल कमल है यह कमल मुक्तिदाता ब्रह्माण्डरूपी शरीरके बाहर स्थितहै अर्थात् शरीरके ऊपर अंतमें है इसी कमल को कैलास कहतेहैं इसी स्थानमें महेश्वरकी स्थितिहै यह ईश्वर निराकुल अविनाशी और क्षयवृद्धिरहित है ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

मूलं-स्थानस्यास्य ज्ञानमात्रेण नृणां संसारेऽस्मिन् सम्भवो नैव भूयः ॥ भूतग्रामं सन्तताभ्यासयोगात् कर्तुं हर्तुं स्याच्च शक्तिः समग्रा ॥ १९७ ॥

टीका-इस स्थानके ज्ञानमात्रसे जीवका यह संसारमें फिर जन्म नहीं होता और सर्वदा यह ज्ञानयोग अभ्यास करनेसे जीवमात्रके स्थिति संहार करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ १९७ ॥

मूलं-स्थाने परेहंसनिवासभूते कैलासनाम्नीह निविष्टचेताः॥योगी हतव्याधिरधःकृताधिर्वायुश्चिरं जीवति मृत्युमुक्तः॥१९८॥

टीका-यह कैलासनामक स्थानमें परमहंसका निवासहै सो सहस्रदल कमलमें जो साधक मनको स्थिर करताहै उसकी सकल व्याधि नाश होजाती है और मृत्युसे छूटके अमर हो जाताहै ॥ १९८ ॥

मूलं-चित्तवृत्तिर्यदालीना कुलाख्येपरमेश्वरे ॥ तदा समाधिसाम्येन योगी निश्चलतां व्रजेत् ॥ १९९ ॥

टीका-जब साधक यह कुलनामक ईश्वरमें चित्त को लीन करदेगा तब योगीकी समाधि निश्चल सम होजायगी ॥ १९९ ॥

मूलं-निरन्तरकृते ध्याने जगद्विस्मरणं भवेत् ॥ तदा विचित्रसामर्थ्यं योगिनो भवति ध्रुवम् ॥ २०० ॥

टीका-यह निरन्तर ध्यान करनेसे जगत् विस्मरण हो जायगा तब योगीको अवश्य विचित्र सामर्थ हो जायगी ॥ २०० ॥

मूलं-तस्माद्गलितपीयूषं पिबेद्योगी निरन्तरं ॥ मृत्योर्मृत्युं विधायाशु कुलंजित्वा सरोरुहे ॥ २०१ ॥ अत्र कुण्डलिनी शक्तिर्लयं याति कुलाभिधा ॥ तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लीयते परमात्मनि ॥ २०२ ॥

टीका-सहस्रदल कमलसे जो अमृत स्रवताहै उसको योगी निरन्तर पान करताहै सो योगी अपनेमृत्युका मृत्यु विधान पूर्वक कुलसहित जय करके चिरं-

जीवी होजाताहै और यही सहस्रदलकमलमें कुलरूपा कुण्डलनी शक्तिका लय होजाताहै तब यह चतुर्विधि सृष्टिभी परमात्मामें लय होजातीहै ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

मूलं-यज्ज्ञात्वा प्राप्य विषयं चित्तवृत्तिर्वि-
लीयते ॥ तस्मिन्परिश्रमं योगी करोति
निरपेक्षकः ॥ २०३ ॥

टीका-यह सहस्रदल कमलके ज्ञान होनेसे अर्थात् इस विषयको प्राप्त करनेसे चित्तवृत्तिका लयहोजाताहै इसहेतुसे इसके ज्ञानार्थ निरपेक्षरूपसे योगी परिश्रमकरे ॥ २०३ ॥

मूलं-चित्तवृत्तिर्यदालीना तस्मिन् योगी
भवेद्ध्रुवं ॥ तदा विज्ञायतेऽखण्डज्ञानरूपो
निरञ्जनः ॥ २०४ ॥

टीका-जब योगीकी चित्तवृत्ति इसमें निश्चय लय होजायगी तब अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जनका प्रकाश होगा अर्थात् ज्ञानहोगा ॥ २०४ ॥

मूलं-ब्रह्मांडबाह्ये संचिंत्य स्वप्रतीकं य-
थोदितं ॥ तमावेश्य महत्शून्यं चिन्तये-
दविरोधतः ॥ २०५ ॥

टीका-ब्रह्माण्डके बाहर अर्थात् शरीरके बाहर पू-

वोंक्त स्वप्रतीकका चिन्तनकरे उससे चित्तको स्थिर करके महत् शून्यका शुद्धवृत्तिसे चिन्तनकरे ॥२०५॥

मूलं–आद्यन्तमध्यशून्यं तत्कोटिसूर्यसमप्रभं ॥ चन्द्रकोटिप्रतीकाशमभ्यस्य सिद्धिमाप्नुयात् ॥ २०६ ॥

टीका–आदि अंत मध्य शून्य यह सर्वत्र शून्यमें कोटि सूर्यके समान प्रभा और कोटि चन्द्रके समान शीतलप्रकाशके देखनेका अभ्यास करनेसे साधकको परमसिद्धि लाभ होगी ॥ २०६ ॥

मूलं–एतद्ध्यानं सदा कुर्यादनालस्यं दिने दिने ॥ तस्य स्यात्सकलासिद्धिर्वत्सरान्नात्रसंशयः ॥ २०७ ॥

टीका–जोपुरुष आलस्यको त्यागके सर्वदा प्रतिदिन इसशून्यका ध्यानकरेगा उसको निश्चय एकवर्षमें सकल सिद्धि लाभहोगी ॥ २०७ ॥

मूलं–क्षणार्धं निश्चलं तत्र मनो यस्य भवेद्ध्रुवं ॥ स एव योगी सद्भक्तः सर्वलोकेषु पूजितः ॥ तस्य कल्मषसङ्घातस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २०८ ॥

टीका–जोसाधक इस शून्यमें अर्धक्षणभी मनको

निश्चल स्थिर रखेगा वही निश्चय यथार्थ भक्त योगीहै और वह सर्व लोकमें पूजित होताहै और उसके पाप-का समूह उसीक्षण नष्ट होजाताहै ॥ २०८ ॥

मूलं–यं दृष्ट्वा न प्रवर्त्तंते मृत्युसंसारव-र्त्मनि ॥ अभ्यसेत्तं प्रयत्नेन स्वाधिष्ठानेन वर्त्मना ॥ २०९ ॥

टीका–इसके अवलोकन करनेसे मृत्युरूप जो सं-सारपथहै इसमें भ्रमण करना छूट जायगा अर्थात् जन्ममरणसे रहित होजायगा इसका अभ्यास स्वाधि-ष्ठान मार्गसे यत्न करके करना उचितहै ॥ २०९ ॥

मूलं–एतद् ध्यानस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ यः साधयति जानाति सोस्माकमपि सम्मतम् ॥ २१० ॥

टीका–हे देवी इस शून्यके ध्यानके माहात्म्यको हम नहीं कहसकते अर्थात् बहुत विशेषहै जो योगी इसका अभ्यास करतेहैं सो जानते हैं और वह हमारे बराबरहैं ॥ २१० ॥

मूलं–ध्यानादेव विजानाति विचित्रफल-सम्भवम् ॥ अणिमादिगुणोपेतो भवत्ये व न संशयः ॥ २११ ॥

टीका-यह शून्यका ध्यानका विचित्र फल ध्यानसे ही जाना जाताहै इसके प्रभावसे साधकको अणिमादि अष्टसिद्धि अवश्य प्राप्त होतीहै ॥ २११ ॥

मूलं-राजयोगो मया ख्यातः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ॥ राजाधिराजयोगोऽयं कथयामि समासतः ॥ २१२ ॥

टीका-हेपार्वती यह राजयोग सर्व तन्त्रोंकरके गोपितहै सो तुमसे हमनें कहाहै अब राजाधिराज योग विस्तार सहित कहते हैं श्रवण करो ॥ २१२ ॥

मूलं-स्वस्तिकञ्चासनं कृत्वा सुमठे जन्तुवर्जिते ॥ गुरुं संपूज्य यत्नेन ध्यानमेतत्समाचरेत् ॥ २१३ ॥

टीका-साधक एकांतस्थान जनरहित सुन्दर मठसे यत्नपूर्वक गुरुकी पूजा करके स्वस्तिकासनसे स्थित होके यह ध्यान करे ॥ २१३ ॥

मूलं-निरालम्बं भवेज्जीवं ज्ञात्वा वेदान्तयुक्तितः॥निरालम्बं मनः कृत्वा न किञ्चिच्चिन्तयेत् सुधीः ॥ २१४ ॥

टीका-बुद्धिमान योगी वेदांत युक्ति अनुसार जीवको और मनको निरालम्ब करके चिन्तन करे इसके सिवाय और कुछ चिन्तना न करे ॥ २१४ ॥

मूलं—एतद्ध्यानान्महासिद्धिर्भवत्येव न संशयः॥ वृत्तिहीनं मनः कृत्वा पूर्णरूपं स्वयं भवेत्॥ २१५॥

टीका—इसप्रकार ध्यान करनेसे महासिद्धि उत्पन्न होगी इसमें संशय नहीं है ऐसेही मनको वृत्तिहीन करके साधक आपही पूर्ण आत्मस्वरूप होजायगा२१५॥

मूलं—साधयेत्सततं योवै सयोगी विगतस्पृहः॥ अहंनाम न कोप्यस्ति सर्वदात्मैव विद्यते॥ २१६॥

टीका—जो योगी निरन्तर इसप्रकार साधनकरे सो इच्छारहितहै अर्थात् उसको किसीवस्तुकी इच्छा नहोगी और उसके वदनसे अहंशब्द कभी उच्चारण नहोगी वह सर्वदा सर्ववस्तुको आत्मस्वरूपही देखेगा॥ २१६॥

मूलं—कोबन्धः कस्य वा मोक्ष एकं पश्येत्सदाहि सः॥ २१७॥ एतत् करोति योनित्यं समुक्तो नात्रसंशयः॥ स एव योगी सद्भक्तः सर्वलोकेषु पूजितः॥२१८॥

टीका—कौन बन्धहै और क्या मोक्षहै सर्वदा एक परिपूर्ण आत्माको देखे जो योगी यह नित्य चिन्तनक-

रताहै सो मुक्तहै इसमें संशय नहींहै और निश्चय वही योगी सद्भक्तहै और सर्वलोकमें पूजनीयहै॥२१७॥२१८

मूलं–अहमस्मीतियन्मत्वा जीवात्मपरमात्मनोः॥ अहंत्वमेतदुभयं त्यक्त्वा खण्डं विचिन्तयेत् ॥२१९॥ अध्यारोपापवादाभ्यां यत्र सर्वं विलीयते ॥ तद्बीजमाश्रयेद्योगी सर्वसंगविवर्जितः ॥ २२० ॥

टीका–योगी अपनेको और जीवात्मा और परमात्माको तुल्य माने अर्थात् भेदरहित होजाय और हम और तुम यह दोनों भावको त्यागके एक अखण्ड ब्रह्मका चिन्तनकरे अध्यारोप अपवादद्वारा जिसमें सर्व वस्तुका लय होजाताहै योगी सर्व सङ्गसे रहित होके उसी बीजके आश्रय होजाया अर्थात् चित्तवृत्ति को आत्मामें लयकरदे ॥ २१९॥ ॥ २२०॥

मूलं–अपरोक्षं चिदानन्दं पूर्णं त्यक्त्वा भ्रमाकुलाः ॥ परोक्षं चापरोक्षं च कृत्वा मूढा भ्रमन्ति वै ॥ २२१ ॥

टीका–मूढबुद्धिके मनुष्य अपरोक्ष अर्थात् प्रत्यक्षपरिपूर्णब्रह्मको छोड करके भ्रममें, पडके परोक्ष और अपरोक्षका रात्रि दिवस निर्णय करते फिरते हैं ॥ २२१ ॥

मूलं–चराचरमिदं विश्वं परोक्षं यः करोति च ॥ अपरोक्षं परं ब्रह्म त्यक्तं तस्मिन् प्रलीयते ॥ २२२ ॥

टीका–जो मनुष्य यह चराचर संसारको शास्त्रसे विवाद करके परोक्ष करते हैं और अपरोक्ष परब्रह्मको त्यागदेते हैं अर्थात् ब्रह्मभी प्राप्त नहीं होता वह अज्ञानी संसारमें लय होते हैं अर्थात् उनका मोक्ष नहीं होता ॥ २२२ ॥

मूलं–ज्ञानकारणमज्ञानं यथानोत्पद्यते भृशम्॥ अभ्यासं कुरुते योगी सदा सङ्गविवर्जितम् ॥ २२३ ॥

टीका–जिससे ज्ञान उत्पन्न होताहै और अज्ञानका नाश होताहै इसी योग अभ्यासको योगी सर्वदा सङ्गरहित होके अभ्यास करे ॥ २२३ ॥

मूलं–सर्वेन्द्रियाणि संयम्य विषयेभ्यो विचक्षणः ॥ विषयेभ्यः सुषुप्त्यैव तिष्ठेत्संग विवर्जितः ॥ २२४ ॥

टीका–बुद्धिमानयोगी विषयोंसे इंद्रियोंको रोकके सङ्ग रहित होके विषयके त्यागमें सुषुप्तिके समान स्थिर रहते हैं ॥ २२४ ॥

मूलं-एवमभ्यासतो नित्यं स्वप्रकाशं प्रकाशते ॥ श्रोतुं बुद्धिसमर्थार्थं निवर्तन्ते गुरोर्गिरः ॥ तदभ्यासवशादेकं स्वतो ज्ञानं प्रवर्तते ॥ २२५ ॥

टीका-इसी प्रकार नित्य अभ्यास करनेसे साधक को आपही ज्ञानका प्रकाश होगा तब गुरुके वचनकी निवृत्ति होगी अर्थात् गुरुके उपदेशका अंत हो जायगा जब इतर वाक्य श्रवण करनेकी इच्छा निवृत्त हो जायगी तब यह योगअभ्यासद्वारा आपही एक अद्वैत ज्ञानमें प्रवृत्ति होगी ॥ २२५ ॥

मूलं-यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ साधनादमलं ज्ञानं स्वयं स्फुरति तद्ध्रुवम् ॥ २२६ ॥

टीका-यह ब्रह्म किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता मन वाक्यकाभी गम नहीं है परन्तु यह योगसाधनसे आपही निर्मल ज्ञान प्रकाश होताहै ॥ २२६ ॥

मूलं-हठंविना राजयोगो राजयोगं विना हठः ॥ तस्मात् प्रवर्तते योगी हठे सद्गुरु मार्गतः ॥ २२७ ॥

टीका-हठयोगके विना राजयोग और राजयोगके विना हठयोग सिद्ध नहीं होता इस हेतुसे योगीको उचितहै कि योगवेत्ता सद्गुरुद्वारा हठयोगमें प्रवृत्त होय ॥ २२७ ॥

मूलं-स्थिते देहे जीवति च योगं न श्रियते भृशम्॥ इन्द्रियार्थोपभोगेषु स जीवति न संशयः॥ २२८॥

टीका-जो मनुष्य इस शरीरसे योगका आसरा नहीं ग्रहण करते वह केवल इंद्रियोंके भोग भोगनेके अर्थ संसारमें जीते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २२८ ॥

मूलं-अभ्यासपाकपर्यन्तं मितान्नं स्मरणं भवेत्॥ अन्यथा साधनं धीमान्कर्तुं पारयतीह न॥ २२९॥

टीका-बुद्धिमान् साधक योग अभ्यासके आरम्भसे अभ्यास सिद्धपर्यंत मिताहारी रहे अर्थात् प्रमाणका भोजन करे अन्यथा अर्थात् अप्रमाण भोजन करनेसे योग अभ्यासके पार न होगा अर्थात् सिद्ध न होगा२२९

मूलं-अतीवसाधुसंलापं साधुसम्मतिबुद्धिमान्॥करोति पिण्डरक्षार्थं बह्वालापवि

वर्जितः ॥२३०॥ त्याज्यते त्यज्यते सङ्गं सर्वथा त्यज्यते भृशम्॥अन्यथा न लभे न्मुक्तिं सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ २३१ ॥

टीका–बुद्धिमान साधक सभामें साधूके समान थोडा और प्रमाण वाक्य बोले और शरीरके रक्षार्थ थोडा भोजन करे और संगको सर्व प्रकारसे तजदे कदापि किसीके संगमें लिप्त न होय हे पार्वती और दूसरे प्रकार कदापि मुक्ति नहीं पावेगा यह हम सर्वथा सत्य कहते हैं इसमें संशय नहीं हैं ॥ २३० ॥ २३१ ॥

मूलं–गुप्त्यैव क्रियतेऽभ्यासः संगं त्यक्त्वा तदन्तरे॥ व्यवहाराय कर्तव्यो बाह्यसंगो न रागतः॥२३२॥ स्वेस्वे कर्मणि वर्तन्ते सर्वे ते कर्मसम्भवाः॥ निमित्तमात्रं करणे न दोषोस्ति कदाचन ॥ २३३ ॥

टीका–साधक संग रहित होके एकान्त स्थानमें योग साधन करे यदि संसारी मनुष्योंसे व्यवहार वर्तनेकी इच्छा करे तो अन्तर प्रीति रहित होके बाह्यसंग करे और अपना आश्रम धर्म कर्मभी इसी प्रकार करता रहै इस हेतुसे कि ज्ञानादि यावत्कर्म हैं सब कर्मानुसार होते हैं फल इच्छा रहित होके केवल निमित्त

मात्र कर्म करनेसे कदापि दोष नहीं है॥२३२॥२३३॥

मूलं–एवं निश्चित्य सुधिया गृहस्थोपि यदाचरेत् ॥ तदासिद्धिमवाप्नोति त्रना कार्या विचारणा ॥ २३४ ॥

टीका–इसी प्रकार निश्चय बुद्धिसे यदि गृहस्थभी योग अभ्यास करे तो वह अवश्य सिद्धिलाभ करेगा इसमें संशय नहीं है ॥ २३४ ॥

मूलं–पापपुण्यविनिर्मुक्तः परित्यक्ताङ्गसाधकः ॥यो भवेत्स विमुक्तः स्यात् गृहे तिष्ठन्सदागृही ॥ २३५ ॥ न पापपुण्यैर्लिप्येत योगयुक्तो यदा गृही ॥ कुर्वन्नपि तदा पापान्स्वकार्ये लोकसंग्रहे ॥ २३६ ॥

टीका–जो साधक पाप पुण्यसे निर्लिप्त इन्द्रिय संगत्यागीहै सोई गृही साधक गृहमें रहके मुक्तहै योग युक्त गृही पाप पुण्यमें बद्ध नहीहोता यदि संसारके संग्रहमें पापभी करेगा तो वह पाप उसको स्पर्श नकरेगा ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

मूलं–अधुना संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसाधनमुत्तमम् ॥ ऐहिकामुष्मिकसुखं येन स्यादविरोधतः ॥ २३७ ॥

टीका—हेदेवी अब उत्तममन्त्र साधन हम कहतेहैं जिससे इस लोक और परलोक दोनों स्थानमें साधक आनन्दपूर्वक सुख भोगेगा ॥ २३७ ॥

मूलं—यस्मिन्मन्त्रे वरे ज्ञाते योगसिद्धिर्भवेत् खलु॥योगेन साधकेन्द्रस्य सर्वैश्वर्यसुखप्रदा ॥ २३८ ॥

टीका—यह उत्तम मन्त्रके ज्ञान होनेसे निश्चय योग सिद्ध होताहै साधकेन्द्रको यह योग सर्व ऐश्वर्य सुखका दाताहै ॥ २३८ ॥

मूलं—मूलाधारेस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसमन्वितम् ॥ तन्मध्ये वाग्भवं बीजं विस्फुरन्तं तडित्प्रभम् ॥२३९॥हृदये कामबीजन्तु बन्धूककुसुमप्रभम् ॥ आज्ञारविन्दे शक्त्याख्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥२४०॥ बीजत्रयमिदं गोप्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ एतन्मन्त्रत्रयं योगी साधयेत्सिद्धिसाधकः॥ २४१ ॥

टीका—जो मूलाधार चतुर्दल संयुक्त पद्महैं उसमें विद्युतके समान प्रभायुक्त वाग्बीजकी स्थितिहै और हृदयकमलमें बन्धूकपुष्पके समान प्रभायुक्त कामबी-

जकी स्थितीहै और आज्ञाकमलमें कोटिचन्द्रके समान प्रभायुक्त शक्तिबीजकी स्थितिहै यह बीजत्रय परम गोपनीय भोग और मुक्तिके दाताहैं यह तीनों मन्त्रका साधन योगी अवश्यकरे ॥ २३९ ॥ २४० ॥ २४१ ॥

मूलं–एतन्मन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा न द्रुतं न विलम्बितम् ॥ अक्षराक्षरसन्धानं निःसन्दिग्धमना जपेत् ॥ २४२ ॥

टीका–साधक गुरुसे यह मन्त्रका उपदेश लेके धीरेधीरे अक्षर अक्षर स्पष्ट उच्चारणपूर्वक स्थिर मनहोके जपकरे ॥ २४२ ॥

मूलं- तद्गतश्चैकचित्तश्च शास्त्रोक्तविधिना सुधीः ॥ देव्यास्तु पुरतोलक्षं हुत्वा लक्ष त्रयं जपेत् ॥ २४३ ॥

टीका–बुद्धिमान साधक एकाग्र चित्तसे शास्त्रविधिअनुसार देवीके समीपमें एकलक्ष होम करके तीनलक्ष जपकरे ॥ २४३ ॥

मूलं–करवीरप्रसूनन्तु गुडक्षीराज्यसंयुतम् ॥कुण्डे योन्याकृते धीमान् जपान्ते जुहुयात्सुधीः ॥ २४४ ॥

टीका–बुद्धिमान साधक जपके पीछे योन्याकार

कुण्ड बनायके कनेरपुष्पके साथ गुड और दुध और घृतमिलायके होमकरे ॥ २४४ ॥

मूलं–अनुष्ठाने कृते धीमान् पूर्वसेवाकृता भवेत् ॥ ततो ददाति कामान्वै देवी त्रिपुरभैरवी ॥ २४५ ॥

टीका–बुद्धिमान् साधक इसीप्रकार अनुष्ठानपूर्वक आराधना करके त्रिपुरभैरवी देवीको सन्तुष्टकरे तो उसको इच्छापूर्वक देवी फलदेतीहैं ॥ २४५ ॥

मूलं–गुरुं सन्तोष्य विधिवत् लब्ध्वामन्त्रवरोत्तमम् ॥ अनेन विधिना युक्तोमन्दभाग्योऽपिसिध्यति ॥ २४६ ॥

टीका–साधक विधिपूर्वक गुरुको संतोष करके यह उत्तममन्त्र ग्रहणकरे इसविधान संयुक्त ग्रहण करनेसे मन्दभाग्य साधकभी सिद्धिलाभ करतेहैं ॥२४६॥

मूलं–लक्षमेकं जपेद्यस्तु साधको विजितेन्द्रियः ॥ २४७ ॥ दर्शनात्तस्य क्षुभ्यन्ते योषितो मदनातुराः ॥ पतन्ति साधकस्याग्रे निर्लज्जा भयवर्जिताः ॥ २४८ ॥

टीका–योगी इन्द्रिय निग्रह पूर्वक एकलक्ष जपकरे तो उसके दर्शनमात्रसे कामातुर स्त्रीयें मोहित

होयके साधकके आगे निर्लज्ज और भयरहित होके गिरतो हैं ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

मूलं-जप्तेनच द्विलक्षेण ये यस्मिन्विषये- स्थिताः ॥ आगच्छन्ति यथातीर्थं विमुक्त कुलविग्रहाः॥ ददाति तस्य सर्वस्वं तस्यै- वच वशेस्थिताः ॥ २४९ ॥

टीका-यह मन्त्र दोलक्ष जप करनेसे कामिनी स्त्रीयें साधकके समीप इसप्रकार आतीहैं की जैसै कुलीना तीर्थोंमें भय लज्जा रहित होके जातीहैं और साधकके वशमें होके अपना सर्वस्व उसको देतीहैं ॥ २४९ ॥

मूलं-त्रिभिर्लक्षैस्तथाजप्तैर्मण्डलीकं समण्डलम्॥२५०॥वशमायान्ति ते सर्वे नात्र कार्या विचारणा ॥ षड्भिर्लक्षैर्महीपालं सभृत्यबलवाहनम् ॥२५१॥

टीका-तीनलक्ष जप करनेसे मंडलसहित मंडलपती साधकके वशमें होजायगे इसमें संशय नहीं हैं और छःलक्ष जप करनेसे साधक बलवाहन संयुक्त राजा होजायगा ॥ २५० ॥ २५१॥

मूलं-लक्षैर्द्वादशभिर्जप्तैर्यक्षरक्षोरगेश्वराः॥

वशमायान्ति ते सर्वे आज्ञां कुर्वन्ति नित्यशः ॥ २५२ ॥

टीका–यह मन्त्र बारहलक्ष जप करनेसे यक्ष और राक्षस और पन्नग यह सब वशमें होके साधककी नित्य आज्ञा पालन करतेहैं ॥ २५२ ॥

मूलं–त्रिपञ्चलक्षजप्तैस्तु साधकेन्द्रस्य धीमतः ॥ सिद्धविद्याधराश्चैव गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ २५३॥ वशमायान्ति ते सर्वे नात्र कार्या विचारणा॥ हठात् श्रवणविज्ञानं सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥ २५४ ॥

टीका–पन्द्रहलक्ष जप करनेसे सिद्ध और विद्याधर और गंधर्व और अपसरा यह सब बुद्धिमान साधकके वशमेंहो जातेहैं इसमें संदेह नहींहै और साधकको हठसे विशेष श्रवणशक्ति होगी और सर्ववस्तुका ज्ञान उत्पन्न होगा ॥ २५३ ॥ २५४ ॥

मूलं–तथाष्टादशभिर्लक्षैर्देहेनानेन साधकः॥ उत्तिष्ठेन्मेदिनीं त्यक्त्वा दिव्यदेहस्तु जायते॥ भ्रमते स्वेच्छया लोके छिद्रां पश्यति मेदिनीम् ॥ २५५ ॥

टीका–जो साधक अठारहलक्ष जप करेगा वह भू-

मिको त्यागके दिव्यदेह होके आकाशमार्गसे संसारमें इच्छापूर्वक भ्रमण करेगा और पृथ्वीके छिद्रोंको देखेगा अर्थात् पृथ्वीमें प्रवेश करनेके मार्ग देखेगा ॥२५५॥

मूलं-अष्टाविंशतिभिर्लक्षैर्विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ साधकस्तुभवेद्धीमान्कामरूपो महाबलः ॥ २५६ ॥ त्रिंशल्लक्षैस्तथाजप्तैर्ब्रह्मविष्णु समोभवेत् ॥ रुद्रत्वं षष्टिभिर्लक्षैरमरत्वमशीतिभिः ॥२५७॥ कोटचैकया महायोगी लीयते परमेपदे ॥ साधकस्तु भवेद्योगी त्रैलोक्ये सोऽतिदुर्लभः॥२५८॥

टीका-जो बुद्धिमान साधक अट्ठाइसलक्ष जप करेगा वह महाबल कामरूपी और विद्याधरपती होजायगा और तीसलक्ष जप करनेसे साधक ब्रह्मा विष्णुके समानहोजायगा और साठलक्ष जप करनेसे रुद्रके समान होजायगा और अस्सीलज जप करनेसें साधक सर्व भूतोंको प्रिय होजायगा और एककोटि जप करनेसे साधक महायोगी होयके परमपदमें लीन होजाताहै पार्वती इसप्रकार योगी त्रिभुवनमें दुर्लभहै२५६।२५७।२५८।

मूलं-त्रिपुरे त्रिपुरन्त्वेकं शिवं परमकारणम् ॥ २५९ ॥ अक्षयं तत्पदं शान्तमप्र-

मेयमनामयम् ॥ लभतेऽसौनसन्देहोधी-
मान् सर्वमभीप्सितम् ॥ २६० ॥

टीका-हेपार्वती एक त्रिपुर शिवही परमकारण स्वरूपहै उनका चरणकमल अक्षय शान्त अप्रमेय अर्थात् प्रमाणरहित अनामय अर्थात् रोगरहितहै सो चरणकमल बुद्धिमान योगी लोगही इच्छापूर्वकलाभ करतेहैं इसमें संदेह नहीं है ॥ २५९ ॥ २६० ॥

मूलं-शिवाविद्या महाविद्या गुप्ताचाग्रेमहेश्वरी॥मद्भाषितमिदं शास्त्रं गोपनीयमतो
बुधैः ॥ २६१ ॥

टीका-हेमहादेवी यह हमारी कही हुई महाविद्या कोही शिवविद्या कहतेहैं यह विद्या सर्वप्रकार गोपनीयहै इस योगशास्त्रको बुद्धिमान लोग कदापि प्रकाश नहीं करतेहैं ॥ २६१ ॥

मूलं-हठविद्यापरंगोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता ॥ भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या-
च प्रकाशिता ॥ २६२ ॥

टीका-सिद्धिकांक्षी योगीलोग इस हठविद्याको अतिगोपित्त रक्खें यह गोप्य रखनेसे वीर्यवती रहतीहै और प्रकाश करनेसे निर्वीर्या होजातीहै ॥ २६२ ॥

मूलं—य इदं पठते नित्यमाद्योपान्तं विचक्षणः॥ योगसिद्धिर्भवेत्तस्य क्रमेणैव न संशयः॥ स मोक्षं लभते धीमान् य इदं नित्यमर्चयेत्॥ २६३॥

टीका—जो विद्वान यह शिवसंहिताका नित्य आद्योपान्तपाठ करेगा उसको क्रमसे अवश्य योगसिद्धि होगी और जो बुद्धिमान इस ग्रन्थका नित्य पूजन करेगा उसको मुक्ति लाभ होगी॥ २६३॥

मूलं—मोक्षार्थिभ्यश्च सर्वेभ्यः साधुभ्यः श्रावयेदपि॥२६४॥क्रियायुक्तस्य सिद्धिः स्यादक्रियस्य कथम्भवेत्॥तस्मात् क्रिया विधानेन कर्तव्या योगिपुंगवैः॥२६५॥ यदृच्छालाभसन्तुष्टः सन्त्यक्तान्तरसंगकः॥ गृहस्थश्चाप्यनासक्तः स मुक्तो योगसाधनात्॥ २६६॥

टीका—मोक्षार्थी और साधु सर्व और मनुष्य जो क्रियासे युक्त होगा उसको सिद्धिप्राप्त होगी क्रियाहीन मनुष्यको क्या होसक्ताहै अर्थात् सिद्धि लाभ नहीं होसकती विधानपूर्वक क्रियाका अनुष्ठानकरे तो इच्छापूर्वक लाभसे सन्तुष्ट होगा और जो गृहस्थहोगा और

इन्द्रियोंमें आसक्त नहोगा सो मनुष्य योगसाधनसे मुक्तहोगा ॥ २६४ ॥ २६५ ॥ २६६ ॥

मूलं-गृहस्थानां भवेत् सिद्धिरीश्वराणां जपेन वै ॥ योगक्रियाभियुक्तानां तस्मात्संयतते गृही ॥ २६७ ॥

टीका-योगक्रियावान् गृहस्थ लोगोंको जप करनेसे सिद्धि प्राप्तहोगी इसहेतुसे योगसाधनमें गृहस्थ मनुष्यको यत्न करना उचितहै ॥ २६७ ॥

मूलं-गेहे स्थित्वा पुत्रदारादिपूर्णः सङ्गं त्यक्त्वा चान्तरे योगमार्गे ॥ सिद्धेश्चिह्नं वीक्ष्य पश्चाद्गृहस्थः क्रीडेत्सो वै सम्मतं साधयित्वा ॥ २६८ ॥

टीका-जो गृहस्थ गृहमें रहके स्त्री पुत्रादिसे पूर्णहोके अंतरीय सबसे त्यागपूर्वक योगसाधनसें प्रवृत्त होय सो सिद्धिचिह्न अवलोकन पूर्वक साधनाकरके सर्वदा आनन्दमें क्रीडा करेगा ॥ २६८ ॥

इतिश्रीशिवसंहितायां हरगौरीसंवादे योगशास्त्रे पंचमः पटलः समाप्तः ॥ ५ ॥ शुभम् ॥

श्रीः।

उमामहेश्वरमाहात्म्यम्।

उमा भगवतीयेयं ब्रह्मविद्येति कीर्तिता॥ रूपयौवनसम्पन्ना वधूर्भूत्वात्र सा स्थिता॥१॥ नानाजातिवधूनां हि बिंबभूतामहेश्वरी॥२॥ यस्याः प्रसादतः सर्वः स्वर्गं मोक्षं च गच्छति॥ इह लोकेसुखं तद्वज्जंतुर्देवादिकोपि वा॥ ३॥ ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रः शक्राद्याःसर्वदेवताः॥ कटाक्षपाततो यस्या भवंति न भवंति च॥४॥पीनोन्नतस्तनीप्रौढजघनाच कृशोदरी॥ चंद्रानना मीननेत्रा केशभ्रमरमंडिता॥५॥ सर्वांगसुंदरी देवीधैर्यपुंजविनाशिनी॥ कांचीगुणेन चित्रेण वलयांगदनूपुरैः॥६॥ हारैर्मुक्तादिसंजातैः कंठाद्याभरणैरपि॥ मुकुटेनापि चित्रेण कुंडलाद्यैः सहस्रशः॥७॥ विराजिताह्यनौपम्यरूपाभूषणभूषणा॥ जननी सर्वजगतो ह्यष्टवर्षाचिरंतनी॥८॥ तयासमेतं पुरुषं तत्प-

तिं तद्गुणाधिकं॥ ब्रह्मादीनां प्रभुं नाना सर्वभूषणभूषितम् ॥ ९॥ द्वीपिचर्मावृतं शश्वदथवापिदिगंबरं ॥ भस्मोद्धूलितस-र्वांगं ब्रह्ममूर्धौघमालिनम्॥१०॥तथैव चं-द्रखंडेन विराजितजटातटं॥गंगाधरं स्मे-रमुखं गोक्षीरधवलोज्ज्वलम् ॥ ११ ॥ कं-दर्पकोटिसदृशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ सृष्टिस्थित्यंतकरणं सृष्टिस्थित्यंतवर्जि-तम् ॥ १२ ॥ पूर्णेन्दुवदनांभोजं सूर्यसो-माग्निवर्चसम् ॥ सर्वांगसुंदरं कंबुग्रीवंचा-तिमनोहरम् ॥ १३ ॥ आजानुबाहुं पुरुषं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ पद्मासनसमासी-नं नासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥ १४ ॥ वाम-देवं महादेवं गुरूणां प्रथमं गुरुम् ॥ स्वयं-ज्योतिःस्वरूपं तमानंदात्मानमद्वयम् ॥ १५ ॥ यतो हिरण्यगर्भोयं विराजो-जनकः पुमान् ॥ जातः समस्तदेवानाम-न्येषां च नियामकः ॥ १७ ॥ नीलकंठम-मुं देवं विश्वेशं पापनाशनम् ॥ हृदिपद्मे

थवासूर्ये वह्नौवा चंद्रमंडले ॥ १७॥ कैला-
सादिगिरौ वापि चिंतयेद्योगमाश्रितः ॥
एवं चिंतयतस्तस्य योगिनो मानसंस्थि-
रम् ॥१८॥ यदा जातं तदा सर्वप्रपंचरहि-
तं शिवं ॥ प्रपंचकरणं देवमवाङ्मनसगो-
चरम ॥ १९ ॥ प्रयातिस्वात्मना योगी पु-
रुषं दिव्यमद्भुतं ॥ तमसः स्वात्ममोहस्य
परंतेनविवर्जितम ॥२०॥ साक्षिणं सर्वबु-
द्धीनां बुद्ध्यादिपरिवर्जितम् ॥ उमासहा-
यो भगवान्सगुणः परिकीर्तितः॥२१॥नि-
र्गुणश्च सएवायं नयतोन्योस्तिकश्चन ॥
ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रः शक्रोदेवसमन्वि-
तः ॥ २२ ॥ अग्निः सूर्यस्तथा चंद्रः कालः
सृष्ट्यादिकारणम् ॥एकादशेंद्रियाण्यंतः
करणंच चतुर्विधम् ॥ २३ ॥प्राणाः पंचम-
हाभूतपंचकेन समन्विताः ॥ दिशश्च प्र-
दिशस्तद्वदुपरिष्टादधोपिच ॥ २४ ॥ स्वे-
दजादीनि भूतानि ब्रह्मांडंच विराड्वपुः ॥

विराड्हिरण्यगर्भश्च जीवईश्वर एव
च ॥ २५॥ मायातत्कार्यमखिलं वर्तते स
दसच्चयत् ॥ यच्चभूतं यच्चभव्यं तत्सर्वं
महेश्वरः ॥ २६ ॥

इति श्रीउमामहेश्वरमाहात्म्यं संपूर्णम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.
खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेंकटेश्वर छापखाना (मुंबई.